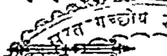
श्री सम्भवनाथ जैन पुस्तकालय सिरिज नं० १६

॥ श्री वीतरागाय नम ॥

श्री सम्भवनाथ चरित्र



ईश्वरलाल जैन जयपुर

श्री सम्भवनाथ जैन पुस्तकालय

ठि० निहाल धर्मशाला सरदारपुरा

फलोदी (मारवाड)

मुद्रक—

भारत प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर.

वि० स० १९९५	प्रथमवार	मूल्य आठ आने
सन् १९३८	२०००	सजिल्द बारे आने

शीघ्रता कीजिये

नहीं तो पछताना पड़ेगा

१—श्री चन्दराजानो रास भावार्थ सहीत [गुजराती]		४)
२—श्री सम्भवनाथ चरित्र [सचित्र]	...	॥)
३—महासती सुरसुन्दरी [सचित्र]	...	॥)
४—धर्मदृढ़ सती सुलसा	... ...	।)
५—महासती मृगावती [सचित्र]	... ...	≡)
६—स्तवन मंजरी	... ...	।)
७—जिनेन्द्र पूजा संग्रह	... ...	≡)
८—घर का 'डाक्टर'...	... ...	=)
९—दृष्टान्त रत्न सञ्चय	... ...	-)
१०—जैन नित्य स्मरणमाला	... ...	-)
११—अकल का तजरबा	.. ...	-)

प्रभावना व प्रचार के लिये लेने वाले को सभी पुस्तकें सस्ते दामों पर दी जा सकेगी। विशेष विवरण के लिये सूचीपत्र मंगाले।

पुस्तकें मिलने का पता—

श्री सम्भवनाथ जैन पुस्तकालय

ठि० नीहाल धर्मशाला, सरदारपुरा,

फलोदी [मारवाड़]

सर्वतन्त्र स्वतन्त्र-शासन सम्राट-सुरी चक्र चक्रवर्ति जगत गुरु-

तपोगच्छाधिपति-भट्टारक

आचार्य श्री विजय नेमिसूरीश्वरजी



जन्म सं० १९२९ दीक्षा सं० १९४५ गणीपद सं० १९६०

पन्य.सपद १९६० सूरिपद १९६४

ॐ

यह पुस्तक

अतीव श्रद्धा और भक्ति के साथ

पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय आचार्य

श्री श्री १००८ श्री

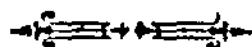
विजय नेमीसूरीश्वरजी

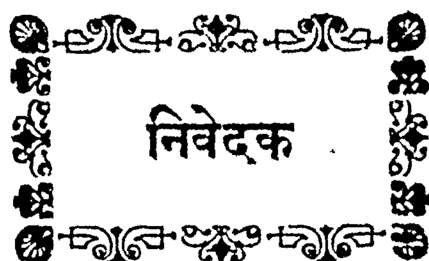
के

कर कमलो में

सादर समर्पित

है





निवेदक

साहित्य-उपासक महाशयों से निवेदन है कि यह पुस्तक जीतना जल्दी आपके सामने रखना चाहिये उतना जल्दी नहीं रख सके हैं उसके लिये हमारे आगे से बने हुए ग्राहकगण भी हम को क्षमा करेंगे।

यद्यपि इस पुस्तक में शुद्धि के लिये बहुत ही ध्यान रक्खा गया है और प्रयत्न किया गया है फिर भी प्रेस दोष या दृष्टि दोष से बहोत ही गलांतियां रह गई हैं जिसको हम दूसरी आवृत्ति में सुधारना उचित समझते है इसलिये वाचकगण हमको क्षमा करेंगे।

प्रुफ सुधारने में और आवश्यक सूचनाओं के लिये हम व्याकरण तीर्थ वैयाकरण भूषण पंडित अमृतलाल मोहनलाल संघवी का और आगे से द्रव्य सहाय देकर बने हुए ग्राहकों का आभार मानना उचित समझते हैं।

श्रावण वदी १३, सोमवार — प्रकाशक

१९९५.

फलोदी [मारवाड़]

प्रस्तावना

(लेखक—पं० हंसराजजी जैन एम. ए., प्रिन्सिपल श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल गुजरांवला) पंजाब,

जैनधर्म के साहित्य—ज्ञानभण्डार को चार विभागों में विभक्त किया गया है द्रव्यानुयोग, कथानुयोग, गणितानुयोग और चरणकरण अनुयोग। द्रव्यानुयोग में जैनधर्म की फिलॉसफी-जीव और कर्म तथा षट् द्रव्य वर्णन है, कथानुयोग में तीर्थंकरों तथा अन्य महापुरुषों के उपदेशप्रदजीवन चरित्र है, गणितानुयोग में क्षेत्रफल, ज्योतिष एवं गणित का विषय है और चरणकरणानुयोग में चरण सत्तरि और करण सत्तरि का वर्णन आदि दिये गये हैं।

कथानुयोग के सम्बन्ध में पाश्चात्य और पूर्वीय विद्वानों ने यह स्वीकार किया है, कि भारतवर्ष के कथा-साहित्य इतिहास में जैन कथानुयोग अधिक प्रशंसनीय और उपयोगी है, कथानुयोग साहित्य की वृद्धि में बड़े बड़े जैनाचार्यों ने अवर्णनीय प्रयत्न किया है, कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य का 'त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र, जिसमें चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव और नौ प्रति वासुदेव इस प्रकार त्रेसठ महापुरुषों का चरित्र दिया है, अत्यन्त महत्व पूर्ण माना गया है।

चरित्रों और कथाओं में एक ऐसी शक्ति विद्यमान है जो मनुष्यों के हृदय का आकर्षण करती है, जिनकी रसिकता के कारण बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी उन्हें सुनना या पढ़ना पसन्द करते हैं वास्तव में जिन जिन कठिन विषयों को साधारण बुद्धि के लोग समझ नहीं सकते उन्हें उन विषयों की कथा द्वारा सरलता से बोध कराया जा सकता है। क्योंकि इस से विषय रोचक हो जाते हैं जहां दूसरे विषयों का अध्ययन

करते हुए बहुतों का मन ऊब जाता है, वहां कथा और चरित्र पढ़ते हुए लोग खाना पीना भी भूल जाते हैं।

जैनधर्म में तीर्थङ्करों के चरित्र विशेष श्रद्धा और भक्ति से पढ़े एवं सुने जाते हैं, अनेक प्राणी उन्हीं से बोध प्राप्त कर अपना कल्याण कर सकते हैं हर साल पर्युषण पर्व में श्री कल्पसूत्र द्वारा तीर्थङ्करों के चरित्र सुनने का सौभाग्य प्राप्त होता है जिनमें कुछ तीर्थङ्करों का चरित्र विस्तार से वर्णित है। इसी तरह हिन्दी भाषा में भगवान आदिनाथ, शान्तिनाथ नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर भगवान के अलग अलग चरित्र विस्तार से उपलब्ध होते हैं, परन्तु अन्य तीर्थङ्करों के चरित्र विस्तृत रूप से अलग अलग उपलब्ध नहीं है प्रस्तुत श्री संभवनाथ चरित्र इस आवश्यकता की एक पूर्ति है।

तीर्थंकर भगवानों के जीवन मे अनेक महत्वपूर्ण और बोध प्रद-शिक्षायें प्राप्त होती हैं, एवं प्रत्येक के चरित्र में कोई न कोई विशेष घटना अपना अलग महत्व भी रखती है श्री संभवनाथ प्रभु के चरित्र से स्वधर्मीवात्सल्यता का महत्व प्राप्त हुआ है, श्री संभवनाथ ने पूर्व जन्म में दुष्काल के समय स्वधर्मी बन्धु को भोजन आदि से सहायता प्रदान कर तीर्थङ्कर गोत्र का बन्धन किया था।

'जिनैः समानधर्माणः साधर्मिका उदाहृताः।,

जिन शासन में समान धर्म वालों को साधर्मिक कहा है—एवं जैन शास्त्रों में स्वधर्मी बन्धु की सहायता करना परम-कर्तव्य एवं पुण्य का कारण बताया है।

साधर्मिवत्सले पुण्यं, भवेत्तद्वचोऽतिगमः।
धन्यास्ते गृहिणोऽवश्यं, तत्कृत्वाश्नन्ति प्रत्यहम् ॥

स्वधर्मीवत्सल से होने वाले पुण्य का वर्णन वचनों से नहीं किया जा सकता जो गृहस्थ सदा स्वाधर्मिवत्सल करके भोजन करते हैं वे धन्य हैं।

न कयं दीणुद्धरणं न कयं साहम्मियाण वाच्छले।
हिययम्मि वियराओ न धारिओ हारिओजम्मो॥

अर्थात्–जिसने दीनों का उद्धार नहीं किया, जिसने साधर्मिवात्सल्य नहीं किया, और जिसने वीतराग प्रभु को हृदय में धारण नहीं किया उसका मनुष्य जन्म पाना ही व्यर्थ है।

स्वयं श्री ऋषभदेव प्रभु ने साधर्मिवात्सल्य को महत्व दिया था, ऋषभदेव प्रभु केवल ज्ञान प्राप्त होने के बाद चौरासी गणधरों सहित विहार करते हुए जब अयोध्या पधारे तो भरत राजा भगवान् को सपरिवार भोजन कराने की इच्छा से उत्तमोत्तम खाद्य पदार्थों की कई गाडियां भर कर समवसरण में पहुंचे और वन्दना के अनन्तर सपरिवार भोजन करने के लिये प्रार्थना की। उत्तर में उन्होंने कहा—कि साधु के लिये राज पिण्ड एवं उनके निमित्त लाया गया पदार्थ तो सदा अग्राह्य है, परन्तु आप निराश न हों प्रथम पात्र वीतराग, दूसरे साधु, तीसरे अणुव्रतधारी और चौथे पात्र दर्शनधर पात्र क्या कि चार पात्र कहे गये हैं अतः तुम अणुव्रतधारी श्रावकों की भक्ति करो जिससे संसार रूपी समुद्र चुल्लु समान हो जाये, इस पर भरत राजा ने अपने स्थान पर आकर सर्व श्रावकों को भोजन कराया।

इसी विषय पर महाराजा त्रिपुरवाहन और दण्डवीर्य की कथायें इसी पुस्तक में आगई हैं। महाराजा कुमारपाल ने श्रावकों से प्राप्त होने वाले बहत्तर लाख रु० के वार्षिक कर को माफ कर दिया था, और कोई भी हीन स्थिति का स्वधर्मी बन्धु राजा के पास जाता था तो राजा उसको एक हजार स्वर्ण मुद्रा देता था, इस प्रकार कुल मिला कर एक करोड़ रुपया वार्षिक स्वधर्मी बन्धुओं के लिये खर्च करता था। इसी तरह धरादना निवासी आभू नामक संघपति ने ३६० स्वधर्मियों को अपने जैसा धनाढ्य किया था, इस प्रकार प्राचीन काल के अनेक उदाहरण मिल

सकते हैं, आज भी जैन समाज में इस प्रथा का किसी न किसी रूप में पालन किया जाता है, समय समय पर स्वधर्मीवत्सल किये जाते हैं, और तीर्थ यात्रा के लिये संघ भी निकाले जाते हैं।

वर्तमान बेकारी के ज़माने में जब हमारे अनेक स्वधर्मी बन्धु भी बेकारी का शिकार हो रहे हैं स्वधर्मिवत्सल की आवश्यकता और उसका महत्त्व और भी अधिक है, परन्तु उन्हें मात्र एक दिन का भोजन करा देने में नहीं, प्रत्युत उनको किसी ऐसे कार्य में जिससे वे अपना जीवन निर्वाह भली भांति कर सके, जोड़ देनें से हम सच्चा स्वधर्मिवत्सल कर सकते हैं।

अन्त में मुझे आशा है कि जैन समाज इस चरित्र से प्राप्त होने वाली अन्य शिक्षाओं को भी ग्रहण कर लेखक के परिश्रम को सार्थक करेगी।

गुजरांवाला
७–५–३८

निवेदक
हंसराज जैन



श्रीमान दानवीर सेठ किशनलाल जी
लूणावत फलोदी (मारवाड)

श्रीमद्विजयधर्मसूरये नम :

दानवीर

नररत्न सेठ किसनलालजी की जीवन सम्पत्ति



उसका ही जन्म हुआ है जिसका कि नाम सदैव लोगोंकी जिह्वा पर रहता है। वही मनुष्य है कि जिसने निःस्वार्थ भावसे परलोक हितके कार्य करने में अपना जीवन का सहयोग दिया है। उसीका ही जीवन पुण्य-मय है जिसने निर्ममत्व भावसे अपने धनका त्याग अन्य लोगोंके हित के लिये किया है। इतिहास के पृष्ठों में सुवर्णांकित अक्षरों से पाया जाता है कि कोई अपने पराक्रमसे तो कोई धैर्यतासे तो कोई-त्यागसे तो कोई दान देकर आदर्श बने हैं। जैन इतिहास में ऐसे बहुत से उदाहरण पाये जाते हैं और उपरोक्त कारणों से ही जगत की सभी जातिओं में जैन जाति का नाम खूब बढा चढा है।

वीर भामाशाह ने अपना अखूट खजाना महाराणा प्रताप को सुपुर्द करके जैन जाति की दानवीरता की ख्याति बढाई थी। काल के मुखमें ग्रास होते मनुष्यों को बचाने के लिये वीर खेमा हडालीया ने अपनी अढलक संपत्ति अर्पण करके बादशाह से "पहेला शाह शाह और दूजा शाह बादशाह" का बिरुद पाया था और जैन जाति आदर्श जाति है। दयालु जाति है इसका भलीभांति जगतको परिचय कराया था। वस्तुपाल-तेजपाल और इत्तर बहुत से मंत्री, सेठ साहूकार हुए हैं जिसने निजीय संपत्ति से देश के, राष्ट्र के, धर्म के, जाति के उद्धार किये हैं और लोकहितार्थ अपनी संपत्ति का सद्व्यय किया है और साथ २ अविचल कीर्ति पाकर देहसे मृतरूप होने परभी कार्यसे-उज्ज्वल, कीर्ति से अमर-बन के जीवन्त आत्मा के रूपमें आज भी आपनी आंख समक्ष चलक रहे हैं।

इस वीसमी शताब्दि के युगमें भी प्रत्येक देशमें जैन-समाज में कितनेही ऐसे दानवीर नररत्न छिपे हुए हैं कि जिसने अपना जीवनका ध्येय "परोपकाराय सतां विभूतयः" किया है। ऐसे ही दानवीरोंमें से एक गुप्त दानी नररत्न की जीवनचर्या का परिचय आप लोगों को करा रहा हूँ।

मारवाड़ में विद्या का प्रचार संपूर्ण रीति से न होने से अज्ञानता और व्हेम घर जमा के बैठे है फिर भी उस भोली मारवाड़ की प्रजामें बहुत संख्यामें धनाढ्यों के घर प्रत्येक शहर और प्रत्येक गावमें पाये जाते हैं। इस कथाके नायक भी मारवाड के एक प्रसिद्ध शहर में जन्मे हैं; सत्कार पाये हैं और धनत्याग यही अपने जीवन का ध्येय बना रखा है।

एक कवि की उक्ति है कि—

उपार्जितानां वित्तानां, त्याग एव हि रक्षणम् ।
तडागोदरसंस्थानां, परिवाह इवाम्भसाम् ॥

ऐसे उपकारी आत्मा को जनसमूह के सामने रखना और खास करके धनीपुरुष ऐसे सपत्तिशील पुरुषके जीवन के किसी अशको अनुकरण करे यही इस लेख का फल है और इसलिये हो लेखक का प्रयत्न है, आशा है कि वाचकगण इससे लाभ उठावे।

जिनका नाम है सेठ किसनलालजी लूणावत ।

जन्मस्थान फलोधी (मारवाड़), माता का नाम मगनबाई, पिता का नाम जयराजजी, गोत्र लूणावत, जन्म-तिथि सवत् १९३८ असाढ वद १४। सेठ जयराजजी एक बडे नीतिकुशल व्यापारी और धनाढ्य पुरुष थे। उनकी इज्जत फलोधी में और आसपास के छोटे बडे गांवमें

अच्छी थी, पुत्र के प्रारब्ध में पिता का वियोग लिखा था इसलिये सात वर्ष की वय में ही पिता देवलोक हो गये। शिक्षण में मारवाड़ सब देशोंकी अपेक्षा बहुत ही पीछे है। और उसी कारण से अपने चरित्र नायक शिक्षा-उच्चशिक्षा-लेने नहीं पाये। फिर भी धार्मिक संस्कार उच्च होने से व्यवहार-कौशल्य में अच्छे थे। धनी होनेके कारण शरीर सौष्ठव तथा पालनपोषण अच्छी तरहसे किया गया था। इस तरह बाल्यकाल व्यतीत होते ही कुछ समयमें सेठ तनसुखदासजी लूणावत के वहाँ श्रीयुत किसनलाल दत्तक लिये गये। पिता का प्रेम पुत्र के ऊपर स्वाभाविक ही होता है उस तरह किसनलाल पर पिता का प्रेम खूब ही था। किसनलाल में खुबी तो एक यही थी कि उनमें कोई व्यसन न था, इस कारण से वह सबके हृदय में अपना स्थान जमा देते थे। अपनी प्रकृति स्वाधीन होने के कारण किसी भी व्यसन में न फसे। हमेशा सरल और सीधे स्वभाव से रहते थे और हर एक के साथ सद्व्यवहार करना उनका जीवन मंत्र था।

पिता का पुत्र पर बहुत प्रेम होता है इसलिये बच्चे को छोटी ही उमरमें संसारी बना देते हैं और किशनलाल को भी बारह वर्षकी उमरमें पिताने गृहस्थ बनाये।

उनके लग्न फलोधीमें दीपचंदजी बरडीया के वहाँ हुए थे। गृहस्थ धर्मकी फरज दम्पती धर्ममें आने के बाद फरजीआत गीनी जाती है ओर इसलिये ही गृहस्थ धर्म-रूप मंदिरमें पैर रखते ही आत्म देह की पूजा के पूजारी बन के सेठ फूलचन्दजी गुलेच्छा के वहाँ मुनीमी करने लगे। इस समय अच्छे मुनीम को बारह महीने के १००) सो रुपीए दीये जाते थे, किशनलाल के भी बारह मासके १००)सो रुपीए नक्की हुए। संपूर्ण विश्वास और नीति-कुशलता से बहुत ही परिश्रम के साथ नियमित नौकरी की और साथ साथ मिलनसार स्वभाव से प्रत्येक के आत्मा में विश्वसनीय हो के प्रतिष्ठा प्राप्त की। सचमुच ही कविकी उक्तिको सार्थक बनाई।

कीड़ा जरासा और, पत्थर मे घर करे।
इन्सान क्यो न पैदा, जो दिल दिलमें घर करे॥

इस तरह किसनलाल ने प्रत्येक के हृदय में अपना स्थान जमाया और उसी ही स्थान में १००) रुपये से बढ़ते ४००) रुपये तक बढ़े यही उनके जीवन की उच्चता को साबित करते हैं। कहो किसनलाल को कौन नहीं चाहता ? उनके प्रति इतनी चाहना हुई कि गाँव के और इधर शहरों के धनाढ्य लोगों ने किसनलाल को चाहा और खेंचातानी हुई। फलोदी सेठ जोरावरमलजी

भोलारामजी कोचर की पाली की पेढी में मुनीम हुये। वहां भी बहुत वर्ष तक उसी रीति से जीवन-यश पाया और देशावर के धनाढ्यों ने इनकी इज्जत कृतज्ञता सुन कर के चाहना की और फल स्वरूप उनको पाली छोड़ कर दक्षिण हैद्राबाद जाना पड़ा। पाली में तो उनकी एक इज्जतदार मुनीम रूप कीर्ति व्यापी हुई है और प्रत्येक व्यक्ति मुनिमजी २ कह कर बोलते हैं और आज भी लोग श्रीयुत किशनलालजी को मुनीम के नाम से पुकारते हैं। सचमुच ही वह लोक-व्यवहार से तो मुनीम हैं लेकिन उसी नाम को सार्थक बनाने के लिये कुबेर भंडारी के मुनीम बने रहे हैं जो कि अढलक धन उत्तम मार्ग में खर्च करते हैं। और कोई भी मनुष्य उनके आंगण पर जाने के बाद निराश बनके वापिस नहीं जाते। सचमुच ही उन्होंने अपने जीवन में एकरार किया है कि—

अतिथिर्यस्य भग्नाशो, गृहात् प्रतिनिवर्त्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा, पुण्यमादाय गच्छति ॥१॥

हैद्राबाद में भी आपके जीवन रूप पुष्प की सुवास चोबाजु फैल गई, लेकिन आपको एक रात को स्वप्न में चन्द्र के दर्शन हुए और आत्मा संशय में पड़ गया और उस बाबत के लिए बहुत से स्थान पर पूछने पर संतोष-कारक जवाब न मिला। बाद में दो ही दिन के बाद

फलोधी से तार द्वारा समाचार मिले कि आपकी धर्म-पत्नी का आत्मा देह मंदिर को छोड़ कर स्वर्ग मंदिर का वासी बना है। इस बात को सुन कर आपको अत्यधिक दुःख हुआ और तात्कालिक हैद्राबाद छोड़ कर वापिस पाली आये। मरने वाली पत्नी से एक पुत्र और एक पुत्री हुये थे। पुत्र का नाम विजयलाल और पुत्री का नाम नाथीबाई है जो हाल विद्यमान है। पुत्र विजय-लालजी भी धर्मिष्ट, नीति कुशल और सरल स्वभावी था, लेकिन आयुष्य बहुत ही कम होने से सिर्फ ३५ वर्ष की वय में (एक पुत्री को छोड कर जिसका नाम किरण है) इस लोक को छोड़ कर परलोक वासी बने हैं। इससे श्रीयुत किसनलालजी को महान आघात हुआ और साथ में पुत्रवधू विधवा बनने से उनका जीवन किस तरह सुखी बने उसकी भी चिन्ता होने लगी। और चित्त बहुत ही व्यग्र हुआ। समय आने पर साध्वी प्रेमश्रीजी के पास दीक्षा दिलाई और उनका जीवन आदर्शमय हुआ और बालवैधव्य को भूल कर अपनी आत्मा का उद्धार करने में दत्तचित्त हो गई। जिसका नाम वसंत श्री हाल में प्रसिद्ध है।

विधुर अवस्था में रह कर गृहस्थ धर्म का पालन करना उचित न लगने से सं० १९६६ में पालिनिवासो

सेठ निहालचन्दजी सराफ के वहां फिर लग्न कीये और उस नई धर्मपत्नी से सं० १६७१ में एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। जिसका नाम संपतलालजी रखा गया। इस नूतन बच्चे का लालन-पालन अच्छी तरह से किया गया। और शिक्षण-उच्च शिक्षण-दिया गया। उच्च शिक्षा के प्रभाव से पुत्र भी पिता के राह का अनुकरण करने वाला हुआ। संपतलालजी सचमुच में ही धर्मप्रेमी और मातृ-पितृ भक्त हैं, मिलनसार स्वभाव और उत्साही नवयुवक जीवन जीने वाले हैं। उच्च शिक्षा के आदर्श स्वरूप सुरसुन्दरी, महासती मृगावती, धर्मदृढ़ सती सुलसा, घर का डॉक्टर आदि पुस्तकें भी लिखी हैं। केलवणी के विषय में आपके बहुत ही उच्च विचार हैं। और इसके लिए आपने एक पुस्तक-प्रकाशन संस्था भी खोल रक्खी है। जिसका नाम है 'श्री संभवनाथ जैन पुस्तकालय'। इस संस्था से छोटे-मोटे आज तक करीब २ बीस ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और हमेशा नया साहित्य प्रगट होता रहता है। आपका हिंदी भाषा पर जितना काबू है उतना गुजराती भाषा के लिए भी है। उपरोक्त लायब्रेरी से सामान्य जनता भी अच्छा लाभ लेती है। सचमुच ही ऐसे नवयुवक के जीवन से अन्य संपत्तिशाली धनाढ्य युवकों को अपने जीवन की प्रत्येक पल लोक हित के

कार्य में लगाकर उन उक्ति को सार्थक बनाना चाहिये— "साहित्य-संगीत कलाविहीनः नरोऽपि भूयात् पशुभिः समानः। अथवा काव्यशास्त्र- विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्" ऐसे धनी पुरुष अपना धन और जीवन का इस तरह व्यय करते हैं यह नीति का धन ही है इसकी साविती है अन्यथा धनियों के आन्तरिक जीवन बहुत ही शोचनीय होते हैं। धन्य है ऐसे धनियों को जो कि सुवर्ण में सुगंध समान अपने जीवन को उत्तम बना के अपने धन का सद्व्यय करने के साथ उच्च शिक्षा लेकर शिक्षा के प्रति प्रेम रखते हुए लोगों को लाभ पहुचाते हैं।

हाल आपकी उम्र मात्र २५ वर्ष की है। इस छोटी उम्र में मारवाड़ की अपेक्षा बहुत ही विकास किया है। आपके लग्न सेठ जोरावरमलजी भोलारामजी कोचर के वहां हुये हैं जहां कि आपके पिता ने जीवन का बहुत सा हिस्सा मुनीमी करके व्यतीत किया है। श्रीयुत संपतलालजी की धर्मपत्नी श्रीमती सपनबाई भी धर्मिष्ठ एवं बड़ीलों की आज्ञा में रहने वाली हैं क्योंकि आप भी एक बड़े खानदान और श्रीमन्त कुटुम्ब की लड़की हैं।

सेठ किसनलालजी के धर्म कार्य।

आचार्य श्री विजयनेमीसूरीश्वरजी महाराज विहार

करते और धर्मोपदेश देते एक समय पाली आये। आचार्य श्री के पधारने से संघ में हर्ष का वायु फैल गया और संघ की इच्छा चातुर्मास कराने की हुई। लेकिन हाथी का पालन राजा ही कर सकता है। महान् आचार्य और बहुत बड़ा समुदाय साथ होने के कारण और जहां महान् आचार्य बिराजमान हो वहां देश-देशावर के लोक मंदिर, उपाश्रय, पाठशाला, बोर्डिंग आदि की टीप करने के लिये आवे, इसलिये संघ को अपनी शक्ति का भी विचार करना चाहिये। इससे पाली के समस्त संघ की दृष्टि श्रीयुत किसनलालजी के प्रति गई। यद्यपि किसनलालजी की शक्ति इस समय मर्यादित थी फिर भी महान् पुरुष का प्रताप ही ऐसा होता है कि भक्ति करने वाले को विघ्न नहीं आता है। इससे आचार्य श्री को चातुर्मास की विनति की गई और चातुर्मास कराया। और बहुत ही उदारता से भक्ति करके चातुर्मास कराने का लाभ आपने अकेलेने ही लिया। चातुर्मास के बाद आचार्य श्री की इच्छा कापरडाजी जाने की हुई, क्योंकि वहाँ हिंसा भी बहुत होती थी, इसलिये ऐसे महान् आचार्य वहाँ जाय तो बहुत ही असर-प्रभाव पड़ सकता है। इसलिये आचार्य श्री की इच्छा संघ लेके जाने की थी। पाली में इस समय यह एक ही गृहस्थ था जो कि

कुछ उदारता बतला सके। संघमें अन्य कोई सखी गृहस्थ न था इसलिये लोगोंमें इस संबंधी कुछ विचार नहीं हुए। लेकिन चरित्र नायक तो सबसे प्रथम आचार्य श्री के पास पहुँच गये, और आदेश देने के लिये विनति की गई। आचार्यश्रीने सेठ को बहुत प्रकार समझाये लेकिन सेठ जीने तो आदेश देने के लिये ही आग्रह किया और आचार्यश्रीने कापरडाजी तीर्थ के संघ के संघपति का यश सेठ किसनलालजी को दिया। अब संघ की तैयारी होने लगी और इधर वायु वेगसे ग्राम-ग्रामान्तर समाचार पहोंच गये और सुनने वालोंको बहुत ही आश्चर्य हुआ और आचार्यश्री के पास आकर लोग कहने लगे कि आपने एक ही गृहस्थ की विनति सुनकर कैसे आदेश दिया? महाराजश्रीने प्रत्युत्तर देते कहा कि धर्म के प्रताप से सब अच्छा होगा।

संवत् १९७४ में कापरडाजी तीर्थका पालीसे संघ गया जिसमें कापरडाजी जाते २ पद्रह हजार मनुष्यों का समुदाय इकट्ठा हो गया। सेठने भी प्रेमसे और उत्साह से सब की सेवा की और पालीसे कापरडाजी तक सब खर्च सेठने ही किया। संघमें हाथी, घोडा गाडी आदि की भी अच्छी व्यवस्था थी। कापरडाजी में अंजनशलाका कराई और एक भाई को दीक्षा भी हुई जो हाल मुनि-

राज श्री कमलविजय जी है। कापरडाजी के भंडार में भी आपने २५००) रूपए भेट किये।

अपूर्व हिम्मत और उज्ज्वल धर्मभावना देखकर आचार्यश्रीका हृदय धर्मप्रशंसक हुआ और हर्षान्वित हृदयसे धर्म प्रेमरूपी धर्मलाभ दिया, जिसके प्रतापसे आज तक उनके घरमें बहुत आनंद २ हो रहा है।

उपरोक्त संघके अलावा और भी दो संघ आपने निकाले है। एक तो जैसलमेर से लोद्रवाजी का स्व आचार्य श्रीमद् कृपाचंद्रसूरि जी के साथ और दूसरा उसी ही आचार्य श्री के साथ फलोधी से खीचन का। आप की धर्मपत्नी श्रीमती सुंदरबाई भी बहुत ही धर्मिष्ठ है। सुंदरबाई के पिताने अपनी सर्व संपत्ति अपनी इस पुत्री को दे दी है और उनकी याददास्ती के लिये श्रीयुत किसनलालजी ने फलोधी में निहाल धर्मशाला तथा एक जिनालय भी बनाया है। और उनकी यादगारी में आचार्य श्रीमद्विजयनीतिसूरिजी के वरद हाथ से उपधान तप की क्रिया भी वहन कराई है। पाली में भी धर्मशाला बनवाई है। इस तरह बहार भी बहुत सी जगह धर्मशालाएं आदि बनवाये हैं। जीर्णोद्धार आदि में भी आप का अच्छा हिस्सा रहता है। इस तरह आप दान धर्म का अच्छा लाभ लेते हैं। प्रति वर्ष शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा

करते हैं और दो तीन मास रहकर तीर्थ-यात्रा का, साधु-साध्वी की वैयावच्च, श्रावक श्राविकारूप तीर्थ का भी खूब लाभ लेते हैं। अपनी समस्त संपत्ति व्यवस्थितरूप में बांटो गई है और स्त्री हक को भी आपने अच्छा मान दिया है। पुत्रवधू, पौत्री और धर्मपत्नी के भी हिस्से कर दिये हैं। आज तक आप करीबन् अढाई लाख रूपये दान में दे चुके हैं और हाल भी फलोधी या पाली में आपके वहाँ कोई भी व्यक्ति आता है वह निराश बन कर वापिस नहीं जाता है। इतना ही नहीं लेकिन इन दोनों शहरो में दानी पुरुष तरीके लोक आपको ही बतलाते हैं और अर्थी को आपके वहां ही भेजते हैं। श्रीयुत किसनलाल जी की दान देने की प्रणालिका भी ऐसी है कि खुद, अपनी धर्म पत्नी, पुत्र, पुत्रवधू और पौत्रो किरण मील पांचो के हाथ से अलग अलग दान दिलाते हैं-दान देने की प्रेरणा करते हैं अर्थात् साथ ही साथ पुण्य के भागी बनाते हैं। आपकी जैसे दान में प्रीति है वैसे ही क्रियाकांड और तपस्या में श्रद्धा और प्रीति है और पति के प्रत्येक कार्य में निरंतर संपूर्ण सहकार देनेवाली आपकी धर्मपत्नी भी सचमुच ही प्रशंसा के योग्य है। यह तो कोई कुदरत का ही संकेत होना चाहिए कि हिन्दुस्तान के कुटुंब-क्लेश के वातावरण से कोई एकाद ही ऐसा कुटुंब

बचा हो कि जिसके घरमें पुत्र संपत्तलाल सचमुच ही संपत्ति समान, पत्नी सुंदरबाई निरंतर सुंदरता में ही खुश रहे। छोटी उमर से माता-पिता का वियोग होने पर भी बाई किरण सूर्य के किरण की जैसे अपने बाल जोवन के किरण फैलाती हुई अपने बडोलों को खुश रखे और पुत्रवधू संपतबाई भी बन सके उतनी सेवा करने में तत्पर रहती है।

१९९५ के वर्द्धमान जैनविद्यालय ओसियां के २३ वें वार्षिक उत्सव के सभापति बन के अच्छा वक्तव्य प्रगट किया था और ५०१) रुपये का दान देने के साथ स्वामी वात्सल्य भी किया था।

कुदरत की ऐसी अथाग महेरबानी होने पर भी अभिमान बिल्कुल है नहीं, उद्धताई या बडपण को स्थान ही नहीं है। बडे की साथ बडे, सेठ के साथ सेठ, सरल के साथ सरल यह उनके जीवनका खास ध्येय है। सचमुच ही यह भारत सुवर्ण भूमि और नररत्ना वसुंधरा कही जाती है। ऐसे ही मनुष्यों से जैन समाज और भारत गौरवशील गिना जाता है, शासनदेव ऐसे नररत्न समाज को अर्पे जिससे समाजका भावी निरंतर उज्ज्वल और उच्च रहे। यही अभ्यर्थना।

मेरे संपूर्ण अनुभव से मैंने सेठ किसनलाल जी के जीवन में जो गुण दीखे वही यहां लिखे हैं अतिशयोक्ति

या झूठी वातो का स्थान इसमें नहीं है। पूज्यपाद विद्या-वल्लभ इतिहासतत्त्व महोदधि आचार्य श्रीमद् विजयेन्द्रसूरि महाराज और योगिराज देवेन्द्रविजयजी महाराज के निमित्त से नररत्न सेठ किसनलाल जी का समागम और संबंध हुआ इसलिये परमोपकारी-आचार्य श्री का और योगिराज श्रीदेवेन्द्रविजयजी का पुनः पुनः आभार मानता हुआ यह जीवन चरित्र समाप्त करता हूं।

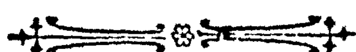
ॐ शांति! शांति! शांति!!!

श्लाघ्यः स एको भुवि मानवानां,
स उत्तमः सत्पुरुषः स धन्यः।
यस्यार्थिनो वा शरणागता वा,
नाऽऽशाभिभङ्गाद्विमुखाः प्रयान्ति ॥

सोमवार
श्रावण वदि ६, १९९५
फलोधी, मारवाड

रचयिता
पं. अमृतलाल मोहनलाल संघवी
व्याकरणतीर्थ वैयाकरणभूषण

पुस्तक वांचनेवाले को खास सूचना



१ पुस्तकको थूक लगाना नहीं।
२ पुस्तकको अशुद्ध पढ़ना नहीं।
३ पुस्तकको पाँव लगाना नहीं।
४ पुस्तकको कभी पटकना नहीं।
५ पुस्तकको पासमें रख कर हवा-छूट करनी नहीं।
६ पुस्तक को पास में रख भोजन करना नहीं।
७ पुस्तक को पास में रख कर पेशाब करना नहीं।
८ पुस्तकको पास में रख कर मलोत्सर्ग करना नहीं, टट्टी जाना नहीं।
९ पुस्तकमें रहे हुए अक्षरों को थूक से मिटाना नहीं।
१० पुस्तक पर बैठना या शयन करना नहीं।
११ पुस्तक को अग्निसे जलाना नहीं।
१२ पुस्तक का पानी से नाश करना नहीं।
१३ पुस्तक को तोड़ना नहीं या अन्य कोई भी तरह से नाश करना नहीं।



श्रीमान सम्पतलालजी
(लूणावत फलोदी मारवाड़)



श्री संभव नाथ चरित्र

पूर्व भव

विश्व भव्य जनाराम, कुल्या तुल्या जयन्ति ताः ।
देशना समये, वाचः, श्री - संभव. जगत्पतेः ॥

अर्थात्--श्री सभव नाथ भगवान के उपदेश मय वचन सभी भव्य प्राणियो को उसी प्रकार तृप्त करते हैं, जिस प्रकार जल की नाली उद्यान (वगीचे) को तृप्त करती है, अर्थात उद्यान में जल के जाने से फल फूल विकसित और प्रफुल्लित होते हैं, श्री सभव नाथ प्रभु के इस प्रकार तृप्त करने वाले वचनो की सब जगह जय हो रही है।

क्षेमपरी प्रजाजन के लिए सचमुच क्षेम और कुशल का स्थान होने के कारण उसका क्षेमपरी नाम सार्थक ही था, नगरी की शोभा तो देखते ही बनती थी, एक दूसरे से बढ कर ऊंचे और मनोहर मकान, गगन चुम्बी रमणीय मन्दिर, उत्तमोत्तम फल फूलों से भरे हुए मन मोहक वृक्षों का समूह, मन को प्रसन्न और शान्ति करने वाले उद्यान, आमोद प्रमोद के मोद के लिए केलिगृह एवं स्थान पर कूवे और जलाशय नर नारियों के लिये आनन्द दायक और सुखप्रद थे। वाणिज्य व्यापार भलीभांति चल रहा था, धन धान्य तथा अन्य किसी वस्तु की कमी न थी ऐसी नगरी में रहने वाले प्रजाजन भी और सुखप्रद थे ही शिष्ट और धर्मवत्सल

थे और सर्वदा बुरे व्यसनों से विरक्त रहते थे, वे नियम पूर्वक अपने धर्म का पालन करते तथा संगठन प्रेम और मर्यादा से अपना जीवन निर्वाह कर रहे थे, इसी कारण उन में धन सम्पत्ति की प्रचुरता थी, ऐसी पवित्र नगरी और गुणी प्रजा का राजा ऐसा था मानो इन्द्र ही स्वयं स्वर्ग से पृथ्वी पर उतर आया हो, उसकी न्याय प्रियता और नीति निपुणता ने उसे प्रजावत्सल एवं हृदय सम्राट बना दिया था, उसकी शासन शक्ति सुदृढ़बुद्धि और दूरदर्शिता के कारण अनेक राजा उसके भक्त थे, इस वीर पुरुष का नाम था विपुल वाहन ।

जिस प्रकार एक माली बागीचे की परिश्रम पूर्वक रक्षा करता है, उसी प्रकार महाराजा विपुल वाहन भी अविश्रान्त रूप से प्रजा के सब प्रकार के दुःखों का नाश करते हुए प्रजा का विधि-पूर्वक पालन करता था । जिस प्रकार चिकित्सा करने वाला वैद्य रोगियों को रोग के अनुसार ही औषधि देता है, उसी प्रकार यह राजा भी अपराधियों को उनके अपराध के अनुसार ही दण्ड देता था । राजा को यदि क्रोध आता था तो उन दुष्ट जनों को शिक्षा देने के लिए; जो कि प्रजा को कष्ट देते थे, इस प्रकार राजा का कोप भी केवल प्रजा के सुख के लिये ही था, जिसका कोप धर्म के लिये होता हो, उसकी दूसरी क्रियाओं का तो कहना ही क्या ? राजा इतना नीति निपुण और न्यायी था, वह दूसरों का अपराध तो क्या ? अपना अपराध भी कभी सहन नहीं करता था । विपुल वाहन के प्रबल प्रताप से प्रखर शत्रु भी अनुचर बने रहते थे, फिर भी उसके राज्य में असंख्य सेना विद्यमान थी, वास्तव

में वह दिग्विजय के लिये नहीं वह तो राज्य-की शोभा और विनोद के लिये थी। उसके राज्य में ऐसे अनेक कारण थे, जिस से राजा को गौरव और अभिमान होना चाहिये, परन्तु राजा तो मद रहित सर्वथा निरहंकारी था, सच तो है वर्षा ऋतु से नदियों को गर्व हो सकता है परन्तु समुद्र को नहीं, क्यों कि वह क्षुद्र नहीं बल्कि गम्भीर होता है।

राजा विपुल वाहन धर्म की साक्षात मूर्ति था, वह जिस प्रकार राज्य शासन चलाने में सर्वथा सचेत और जाग्रत था, उसी प्रकार बारह प्रकार के श्रावक धर्म पालने में भी जाग्रत था, वह धर्म रूपी वृक्ष को भली भांति सींचने के लिये अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार पुष्कल द्रव्य से जिन भवन, जिनबिंब जिनागम, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका इन सातों क्षेत्रों की सेवा करता रहा, वह केवल अरिहन्तदेव, गुरु और सर्वज्ञ भाषित धर्म का ही अनन्य भक्त था, उसके हृदय मन्दिर मे सदा वीतराग प्रभु की मूर्ति ही विराजमान थी, उसकी वाणी मे सर्वज्ञ देव के गुणों की ही प्रशंसा थी, वह केवल देव, गुरु, धर्म के आगे ही श्रद्धा से सिर झुकाता था एवं उनकी ही आज्ञा का पालन करता था। उस पवित्र हृदय वाले राजा ने धर्म और शुक्ल ध्यान से अपने मन को स्वाध्याय से वाणी को एवं जिनेन्द्र प्रभु के पूजन द्वारा अपने शरीर को कृत्य २ किया था, धर्म प्रेमी राजा को यद्यपि अपने राज्य शासन एवं अन्य कार्यों से पूर्ण संतोष था, परन्तु धर्म की क्रिया में उसे कभी संतोष नहीं हुआ। वह सदा धर्म करने का अभिलाषी रहा उसका बन्धु था तो धर्म, मित्र था तो न्याय और धन था गुण दयालु, विपुल वाहन दीन-हीन

याचकों पर द्रव्य की इस प्रकार वृष्टि करता था जिस प्रकार बादल जल बरसाते हैं, परन्तु बादलों की तरह उस में जरा भी गर्जना नहीं थी, क्योंकि वह तो निरहङ्कारी था जिस प्रकार कल्प वृक्ष सब की इच्छाओं को पूर्ण करता है, उसी प्रकार यह राजा भी अपनी प्रजा की इच्छाओं को सर्वथा पूर्ण करता था. इस लिये उसकी प्रजा में आनन्द, सुख, और शान्ति व्याप्त थी। इस प्रकार न्याय और नीति पूर्वक विपुल वाहन राज्य संचालन कर रहा था।

दुष्काल

संसार परिवर्तन शील है, आज तक जिस प्रजा के सौभाग्य सूर्य का उदय हुआ था, दूज के चाँद की तरह जिसकी वृद्धि हो रही थी, काल दोष से उस के भाग्य ने पलटा खाया, जिस तरह काल दोष से एक दिन तेजस्वी सूर्य भी राहु से ग्रसा जाता है, ठीक उसी तरह यहां भी दुर्भाग्य से एक समय ऐसा आगया जब कि उस देश में त्राहि २ मचादेने वाला भयङ्कर दुष्काल पड़ गया, भवितव्यता का योग उलंघन नहीं किया जा सकता, जो भाग्य में लिखा है वह तो होके ही रहेगा।

वर्षा की ऋतु थी, परन्तु पानी की एक बूंद भी आकाश से न पड़ी, लोग चातक की तरह आकाश की ओर देखा करते थे, परन्तु वहां वर्षा थी क्या ? कहीं मेघों का ही नामो निशान न मिलता था, इस लिये वर्षा ऋतु बड़ी भयंकर प्रतीत होने लगी, ग्रीष्म ऋतु ने अपना दुबारा साम्राज्य फैलाया हो, यही मालूम

होता था, कड़कती हुई धूप तो थी ही और गर्मी भी, इधर नैऋत्य दिशा का प्रलयकारी प्रचण्ड पवन इस प्रकार चलने लगा कि रहा सहा जल भी सर्वत्र सूखने लगा बड़े बड़े वृक्ष जड़ से उखड़ कर गिरने लगे, इस वर्ष खेतों से अन्न का एक दाना भी प्राप्त न हो सका, बस इसी कारण सर्वत्र त्राहि त्राहि मचने लगी, अन्न न मिलने के कारण लोग तपस्वियों की तरह कंद, मूल, फल और वृक्षों की छाल खाकर जैसे तैसे गुजारा करने लगे, कंद मूल और छाल भी अधिक मात्रा में तथा प्रति दिन प्राप्त न होते थे, सौभाग्य से यदि किसी को भर पेट भोजन मिल भी जाता तो भी उसे सन्तोष नहीं होता था, क्यों कि अब तो यही प्रतीत होता था कि मन को भस्मक रोग हो गया है, उदर पूर्ति के लिये अन्न मिलता नहीं, इस लिये भूख से विह्वल हुए माता पिता और पुत्र कि कर्तव्य विमूढ़ हो कर इधर उधर भाग रहे हैं, पुत्र भूख और प्यास से तड़प रहा है, और एक टुकड़े की अभिलाषा से पिता की ओर आंखे लगाये हुए है, परन्तु पिता को उसकी कोई चिन्ता नहीं, यदि आज पिता को खाने के लिये एक टुकड़ा मिल गया है तो वह बिलखते हुए पुत्र को न देकर अपने ही पेट की आग बुझाने में लगा हुआ है, पुत्रवत्सला मातायें आज चाण्डालनियों की तरह गली गली घूमती हुई एक मुट्ठी चनों के लिये अपने हृदय के टुकड़ों को बेच रही हैं, कितनी हृदय विदारक दशा है, प्रातःकाल ही गरीबों के झुण्ड धनवानों की हवेलियों में बिखरे हुए अन्न दानों के लिये इकट्ठे हो रहे हैं, और पक्षियों की तरह एक एक दाना चुनने में लगे हुए हैं, दुर्जन और दुष्ट लोग हलवाइयों की दुकानों के आस पास कुत्तों की तरह घूम रहे हैं, और मौका

जाकर खाने के पदार्थों पर झपटा मार कर भाग जाते हैं, कई बेचारे कुत्तों को डाली गई झूठन को ही कुत्तों के मुंह से छीन कर अपने उदर को शान्त कर रहे हैं, कई स्वाभिमानी लोग जिन को कभी दूसरों के टुकड़े के आश्रित न होना पड़ा था, इन दिनों वे भी भोजन प्राप्त करने एवं अपनी लज्जा को छिपाने के लिये कपट तापस का भेष बना कर फिर रहे हैं, कई व्यक्ति सारा दिन इधर से उधर दौड़ धूप कर शाम को थोड़ा सा भोजन लाते हैं, और जिस दिन खाने के लिये एक टुकड़ा भी हिस्से में आ जाता है वह दिन अपने लिये सौभाग्य का समझते हैं, आज जिस के पास एक टुकड़ा भी खाने के लिये है, वह अभिमान से दूसरों को दिखा कर खा रहा है। कई भाग्य हीन मनुष्यों को अन्न का दाना मुंह में डाले आठ आठ दिन हो गये हैं, शरीर की हड्डियां नजर आने लग पड़ी हैं, भूख से तड़पते और बिलखते हुए अस्थि-पञ्जर मनुष्यों के इधर उधर आने जाने से नगर के राज मार्ग भी स्मशान से भयंकर मालूम हो रहे हैं, जगह जगह भूखे लोगों के कोलाहल चित्कार और त्राहि त्राहि सत्पुरुषों के कान ऐसे दुःखने लगे जैसे उनके कानों को कोई सूई से बींध रहा हो।

ऐसे प्रलयकारी भयंकर दुष्काल को देख कर राजा विपुल-वाहन भी दुखित और चिन्तित रहने लगे। 'मेरी प्रजा पर इस समय आपत्तियों के बादल मंडरा रहे हैं, उनका सर्व नाश होता जा रहा है, इस समय मेरा कर्तव्य है कि मैं इस दुष्काल में सम्पूर्ण पृथ्वी की रक्षा करूँ, परन्तु मेरे में इतनी सामर्थ्य कहां है मेरे पास इतने साधन कहां है? यह पापी दुष्काल मेरे अन्य शत्रुओं की तरह मेरे अस्त्र शस्त्र से तो नाश होने वाला नहीं,

इससे रक्षा करने के लिये तो 'अन्न चाहिये' परन्तु वह पुष्कल मात्रा में उपलब्ध होना सुलभ नहीं। सबसे अधिक दु:ख तो यह है कि इस भयङ्कर दुष्काल के कारण चतुर्विध संघ का भी क्षय होता जा रहा है, मुनिराजो एवं स्वधर्मी बन्धुओं का दु:ख तो मेरे से नहीं देखा जाता मेरे लिये तो यह दु:ख असह्य हो रहा है यदि मैं सबकी रक्षा नहीं कर सकता तो कम से कम चतुर्विध संघ की तो मुझे अवश्य रक्षा करनी चाहिये।

इस प्रकार चतुर्विध संघ की रक्षा का अपने मन मे विचार और निश्चय करके अपने रसोइयों को बुलवाया। रसोइये आज्ञा पाते ही राजा की सेवा मे उपस्थित हुए और सविनय हाथ जोड़ और प्रणाम करके पूछने लगे अन्नदाता! पृथ्वीपति! आप हमें अपनी आज्ञा प्रदान कर कृतार्थ करें, हम आप की आज्ञा को सर्वथा शिरोधार्य कर तदनुसार कार्य सम्पन्न करेंगे राजा विपुल वाहन ने उन्हे हुक्म दिया, कि आज से हमारे भोजनालय में जो भोजन तैयार हो, उसके द्वारा सब से पहले श्री संघ को भोजन कराया जाय उनके भोजन करने के पश्चात् जो कुछ अन्न बाकी बचेगा, वही बचा हुआ अन्न सब के पश्चात् मैं खाऊँगा अत मेरे लिये बनाया हुआ भोजन साधु-मुनिराजों की सेवा में समर्पितकर देना, और दूसरे भोजन से श्रावकों को भोजन कराते रहना।

'जो आज्ञा महाराज!' कहकर रसोइये वहा से विदा हुए और भोजनालय में पहुंचकर अपने अपने कार्य में लग गये। अब तो राजा की आज्ञा के अनुसार रसोइये नित्य ही राजा का भोजन मुनियों को, एवं अन्य भोजन श्रावकों को देने लगे, और इन कार्यों की देख रेख स्वयं राजा विपुल वाहन करने लगे।

अब वहां के श्रावकों को दूध और मलाई, खीर और श्रीखंड, दही और वड़े एवं कई प्रकार के मिष्टान्न और पकान्न, तरह तरह के अमल- अमृत समान रस से भरे हुए पदार्थ एवं भिन्न भिन्न भांति के स्वादिष्ट शाक आदि राजाओं के योग्य भोज्य पदार्थ श्रावकों को मिलने लगे। एवं मुनिमहाराजो को भी एषणीय, कल्पनीय और प्रासुक आहार राजाविपुल वाहन स्वयं अपने हाथ से देने लगे।

इस प्रकार उस प्रदेश में जब तक भयंकर दुष्काल रहा, तब तक राजाकी ओर से सर्व संघ को यथाविधि भोजन पूरा किया जाता था, सर्व संघ की यथोचित वैयावच्च करने एवं उनकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के कारण राजा विपुल वाहन ने तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया।

संसारकी असारता

एक दिन की बात है कि महाराजा विपुल वाहन राजमहल की छत पर बैठे हुए अपने राज्य की शोभा देख रहे थे, इतने में एक एक बादलों को आकाश पर चढ़ते हुये देखा, देखते ही देखते काले काले बादल आकाश में चारों ओर फैल गये, मानों आकाश को पहिनने का वस्त्र मिल गया हो, बादलों की गड़गड़ाहट के साथ बिजली भी तेजी से चमकने लगी, अभी बिजली की चमक और बादलों की गड़गड़ाहट बढ़ ही रही थी कि इतने में वृक्षों को जड़मूल सहित कंपाती और उखाड़ती हुई प्रचण्ड वायु बहने लगी, इस भयङ्कर पवन से फैले हुए बादल तत्क्षण 'अर्कतूल'

की तरह उड़ गये, और बादलों के तितर बितर हो जाने से आकाश बिल्कुल स्वच्छ हो गया।

महाराजा विपुल वाहन इस क्षणिक दृश्य को बड़े ध्यान से देखते रहे, क्षण मे आकाश में बादल चढे और चारों ओर व्याप्त हुए, एवं देखते ही देखते वे सर्वथा नष्ट होगये, इस विचित्र दशा को देखकर राजा विचार सागर में मग्न हो सोचने लगा।

अहा! संसार की कैसी विचित्र दशा है, जैसे मेरे देखते ही देखते आकाश पर चढ़े हुए बादल अल्प समय में ही नष्ट भ्रष्ट हो गये, वैसे ही इस संसार की अल्प वस्तुयें भी देखते ही देखते क्षण में नष्ट हो जाने वाली हैं, जिस समय एक वस्तु पूरे यौवन पर होती है जिसके लिये यह कल्पना भी नहीं होती कि इसका सर्वनाश होगा, उसका तत्काल ही नष्ट भ्रष्ट हो जाना कम आश्चर्य जनक नहीं, इस मनुष्य देह की भी तो यही दशा है, जो प्राणी स्वेच्छा से बोलता है, खुशी से हसता है, आनन्द में खेलता है, मग्न होकर नाचता है, आह्लादकारी गाने गाता है, अपनी इच्छा पर सोता है, उठता है, बैठता है, चलता है, एवं तरह तरह की क्रियायें करता है, भिन्न भिन्न प्रकार की सवारिया करता है, आमोद प्रमोद के साधन बनाता है, क्रोध करता है और प्रसन्न होता है धन और सम्पत्ति को एकत्रित करने के लिये तरह तरह के प्रयत्न करता है, झूठ और मक्कारी से लोगो को धोखा देता है एवं घर के अन्दर तथा बाहर आनन्द विलास करता है परन्तु वही एक दिन ऐसी नींद सोता है कि फिर उठने का नाम ही नहीं लेता। कोई नहीं जानता कि कब वह काल से ग्रसित हो जायेगा, मृत्यु तो हर समय तलवार की तरह सिर पर लटक रही है, बुद्ध

मालूम नहीं कि हमारी मृत्यु का कौनसा कारण बन जाये। हम देखते हैं कि किसी को काल से प्रेरितसर्प आकर काट खाता है, और उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती है किसी पर प्रचण्ड बिजली आ पड़ती है, जिससे प्राणी की तत्क्षण मृत्यु हो जाती है, किसी को उन्मत्त हाथी आकर अपने दंताशूल से पीस डालता है अथवा पैरोंतले कुचल डालता है, किसी को व्याघ्र ही भक्षण कर डालता है, किसी पर कोई मकान अथवा पुरानी दीवार टूट कर आ गिरती है और वह उसी के नीचे दब कर मृत्यु की शरण लेता है कहीं प्रदीप्त हुई अग्नि की ज्वाला में ही जलाकर भस्म करदेती है, तो कहीं महा वृष्टि से उत्पन्न हुई नदी की बाढ़ ही तेजी से बहा लेजाती है।

शरीर एक व्याधि मन्दिर है जिसमें तरह तरह की ऐसी व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं जिनका कोई उपाय ही नहीं हो सकता, कभी शरीर के सब अंगों में वायु का दोष हो जाता है तो कभी शरीर की तमाम गर्मी शान्त होकर कफ उत्पन्न करती है, और कभी पित्त का प्रकोप भी प्राण पंखेरु उड़ाने में कारण होता है। किसी पर अकस्मात ज्वर का आक्रमण होता है तो किसी पर सन्निपात का कोई विशुचिका रोग से परेशान है तो कोई राजयक्ष्मा क्षय रोग से पीड़ित पड़ा हुआ अपने जीवन के दिन गिन रहा है। किसी को खांसी का प्रकोप है तो कोई श्वास रोग से दुःखित हुआ अन्तिम श्वास ले रहा है किसी को संग्रहणी की व्याधी चिपटी हुई है तो कोई शूल रोग से आहें भर रहा है, ऐसी तरह तरह की व्याधियों से प्राणी की अकस्मात् ही अकाल में मृत्यु हो जाती है, मनुष्य के प्राणों का कोई भरोसा नहीं कि यह

कब इस देह से अलग हो जाये, एक व्यक्ति शिकार खेलने के लिये जगल मे जाता है, परन्तु वह दूसरे को निशाना बनाने से पूर्व स्वयं ही निशाना बन जाता है।

एक प्राणी अत्यन्त बल शाली है, स्वस्थ है, अपार धन सम्पत्ति का मालिक है, माता-पिता, भाई, बन्धु आदि कुटुम्बी जन हैं, कई दास-दासियां विद्यमान हैं, भोगविलास की सामग्री में कुछ भी कमी नहीं, परन्तु उसकी मृत्यु भी अनिवार्य है, उसे मृत्यु मुख से कोई भी नहीं बचा सकता और न ही कोई व्यक्ति उसकी कोई सहायता कर सकता है, मनुष्य यह सब कुछ देखते हुए भी निपट अन्धा हो रहा है, संसार की दशा एव असारता को जानते हुए भी पशु की तरह अल्पज्ञ मनुष्य अपने जीवन को शाश्वत समझ कर मोह एवं भ्रमजाल में फसा हुआ है, 'यह तेरा है और वह मेरा है', का ममत्व मरते दम तक बनाये रखता है, अपना बचपन खेल कूद मे यौवन भोग विलास में और वृद्धावस्था अस्वस्थता और असमर्थता में व्यतीत कर देता है, परन्तु धर्म कार्य करने का तो विचार तक नहीं करता, अन्तिम समय तक उसे संसार की चिन्तायें घेरे रहती हैं, मोहासक्त पुरुष इन्हीं बातों के चक्कर में पड़ता है कि मेरा भाई आज कल बेकार और निकम्मा है मेरा पुत्र अभी छोटा है यह कन्या अभी कुंवारी है, यदि मेरी मृत्यु हो गई तो इनकी रक्षा कौन करेगा ? मेरे मात पिता वृद्ध हैं, सास सुसर निर्धन स्थिति मे हैं और बहिन विधवा है, इस प्रकार यह सारा परिवार मेरे पर ही अवलम्बित है, मुझे ही इनकी हर तरह से रक्षा करनी है, इसी ही चिन्ता मे रात दिन व्यस्त रहता है ! परन्तु वह यह नहीं जानता कि यह परिवार संसार रूपी समुद्र

में डुबाने के लिए हृदय पर बांधे हुए पत्थर की तरह है, अन्त समय इन में से मेरी कोई भी सहायता करने वाला नहीं, यह मात-पिता, भाई, बहिन, स्त्री और पुत्र, बन्धु और मित्र सब अपने २ स्वार्थ के कारण ही साथी बने हुए हैं। संसार स्वार्थ में अन्धा हो रहा है, इसका स्वप्न में भी विचार किये विना मृत्यु मुख में पड़ा हुआ जड़ पुरुष यह पश्चाताप करता है कि अहो! इस जन्म में मैं स्त्री के आलिंगन और भोग का पूर्ण सुख प्राप्त नही कर सका, अभी तक दूध घी और तरह तरह के मिष्टान्न से किञ्चित भी तृप्त नहीं हुआ, फूल और इतर सूंघने की अब भी इच्छा है, मनोहर पदार्थों के देखने का मनोरथ पूर्ण नहीं कर सका, वीणा युक्त वेश्या के नाच और गाने का आनन्द एक बार भी नही लिया, अपने कुटुम्बियों के लिए पुष्कल धन सम्पत्ति का भण्डार भरपूर नहीं कर सका, अपने इस पुराने घर को फिर से नया बन वाने का काम तो अभी बाकी पडा है, बलवान और शिक्षित घोड़ों की सवारी का आनन्द उठा ही नही सका सिखा कर तैयार किये हुए बैलों की उत्तम रथ में जोड़ कर एक बार भी आनन्द नहीं लिया, मैं अपने पुत्र और कन्या का विवाह ही नहीं देख सका, इस प्रकार हाय हाय करता हुआ मनुष्य इस संसार से प्रस्थान कर जाता है, परन्तु वह इस बात का पश्चाताप तो करता ही नहीं कि मैंने अपने जीवन में धर्म कार्य नहीं किये, प्रभु भक्ति के लिये समय नही निकाला, मेरे भावी जीवन के लिए तो केवल धर्म ही एक सहायक है, इस संसार में तो अनेक प्रकार के संकट मनुष्य पर आते रहते हैं, मृत्यु सदा ही अपना हाथ फैलाये तैय्यार खड़ी है, एक ओर राग द्वेष आदि

शत्रु दूसरी ओर दुर्जन की तरह प्रबल कषाय विपत्तियों में डोलते ही रहते हैं, इस लिये इस संसार में मरुभूमि की तरह कुछ भी सुखकारी नहीं, इतना होने पर भी इस में प्राणी सुख कैसे मान रहे हैं और वैराग्य भाव क्यों नहीं उत्पन्न होता ? सुना भाम मे मूढ प्राणी पर प्राण का नाश करने वाला कालपाश ऐसे आपडता है और नष्ट कर डालता है जैसे रात्रि के समय निश्चिन्त सोई हुई सेना पर शत्रु दल आक्रमण कर के उनका सर्वनाश कर डालता है, इस नाशवत शरीर से धर्माचरण करके मोक्ष का फल ही प्राप्त करना चाहिये यद्यपि इस नष्ट होने वाले शरीर से अविनाशी पद मुक्ति प्राप्त करना सुलभ है तथापि मूढ प्राणी इस को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करता।

अन्तिम निश्चय

इस प्रकार राजा विपुल वाहन को यह संसार बुद्बुद् के समान चरित्र मालूम होने लगा, वे विचारने लगे कि न मालूम मेरी कब मृत्यु हो जाये मुझे तो इस शरीर से निर्वाण सम्पति प्राप्त करने का ही प्रयत्न करना है मैं तो उत्साह से इस कार्य मे संलग्न हो जाऊं, मुझे तो शुभस्य शीघ्रम् के अनुसार तुरन्त ही यह राज्य अपने पुत्र को सौंपकर सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त हो धर्म ध्यान मे प्रवृत्त हो जाना चाहिये।

इस प्रकार दृढ निश्चय करके राजा विपुल वाहन ने द्वारपाल को बुलाया और उसे अपने प्रियपुत्र विमल कीर्ति को तत्काल बुला लाने के लिये कहा द्वारपाल यह आज्ञा पाते ही राजकुमार के पास गया और नम्रता पूर्वक राजा की आज्ञा कह सुनाया।

राजकुमार विमल कीर्ति सद्गुणी, विचारशील, विनयी, वीर और साहसी था; अपने पूज्य पिता श्री की आज्ञा पाते ही तुरन्त उनकी सेवा में उपस्थित हुआ, और अपने इष्ट देव की तरह परम भक्ति से पिता के चरणों में नमस्कार किया ? और हाथ जोड़ कर सविनय इस प्रकार निवेदन किया—

'पिताजी ! आज आप मुझे कोई महान आज्ञा प्रदान कर प्रसन्न हों और मुझे कृतार्थ करें, आज्ञा करने में यह शङ्का कदापि न करें कि यह पुत्र अभी बालक है, मैं आप की कृपा और आशीर्वाद से कठिन से कठिन कार्य भी पूर्ण कर सकूंगा। बस मुझे तो आज्ञा करें कि मैं आपके किस शत्रु की पृथ्वी को स्वाधीन कर लाऊं किस पहाड़ी राजा को पर्वत सहित पराजित कर आप की सेवा में उपस्थित करूं, जलदुर्ग में रहें हुए किस शत्रु को जल सहित नाश कर दूं। पिता जी ! इनके अतिरिक्त अन्य भी कोई आप को कण्टक रुप हो तो मुझे शीघ्र आज्ञा करें जिससे उस कण्टक को आप के आगे से उखेड़ कर दूर फैंक दूं। पूज्य जनक ! मै यद्यपि अभी बालक हूँ परन्तु आपका पुत्र होने के कारण दुःसाध्य साधन में सर्वथा समर्थ हुँ इस में मेरी तो कोई बहादुरी नहीं यह सब आपका ही प्रबल प्रताप और प्रभाव है, आप शीघ्र ही मुझे अपनी आज्ञा प्रदान कर अनुग्रहीत करें, मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करने को लालायित हूँ।

अपने पुत्र के इस प्रकार वीरता पूर्ण वचन सुन कर राजा विपुल वाहन ने कहा—ऐ दीर्घभुजा वाले वीर कुमार ! इस समय मेरा कोई भी शत्रु विद्यमान नहीं है, कोई पहाड़ी राजा मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करता और न ही किसी द्वीप का कोई

राजा मेरी आज्ञा का अनादर करता है कि जिस पर विजय पाने के लिये मैं तुम्हें भेजू।

परन्तु हे कुल भूषण! पृथ्वी का भार धारण करने में समर्थ मुझे एक यह भववास हमेशा शल्य की तरह कष्ट दे रहा है, मेरी हार्दिक इच्छा है कि तू मेरे इस कार्य में सहयोगदे, और परम्परा से आये हुए इस राज्य को मेरी तरह तू अंगीकार कर, जिससे मैं संसारिक चिन्ताओं से निश्चिन्त होकर भवसागर से पार उतारने वाली दीक्षा को लेकर इस भववास का हमेशा के लिये त्याग करू।

हे वत्स! याद रखो, तुम ने अभी ही मेरी आज्ञा को शिरोधार्य करने की प्रतिज्ञा की है, अपनी इस प्रतिज्ञा और गुरु जनों की आज्ञा को भक्ति पूर्वक मानकर अपना कर्तव्य पालन करो, इस आज्ञा के विरुद्ध न तो तुम्हारे लिये विचार करना उचित है और न ही कहना।

अपनी ही प्रतिज्ञा में बन्धा हुआ राजकुमार विमल कीर्ति अपने पिता के इस प्रकार वचन सुनकर विचार में पड़गया और सोचने लगा कि पिताजी ने अपनी आज्ञा देकर और मुझे अपनी प्रतिज्ञा की स्मृति दिलाकर निरुत्तर कर दिया है, अब मैं क्या करूं? राजपुत्र विमल कीर्ति इस प्रकार सोच ही रहा था कि इतने में राजा विपुल वाहन ने तत्काल उसका अभिषेक महोत्सव करके अपने हाथ से ही राज सिंहासन पर बैठा दिया।

दीक्षा और परलोक गमन

इधर विमलकीर्ति का राज्याभिषेक महोत्सव हुआ तो उधर विपुल वाहन के दीक्षा-अभिषेक की तैयारी होने लगी, महाराजा

विपुल वाहन के लिये तुरन्त एक शिविका आ गई, और वह इस राज वैभव और धन सम्पति को तिनके की तरह तुच्छ समझ कर सदा के लिये त्याग कर चल दिया, और तत्काल शिविका में बैठ कर वे वहाँ पहुंचे जहां पर स्वयंप्रभ नामक आचार्य विराजमान थे। श्री स्वयंप्रभसूरि के पास पहुँच कर उनको श्रद्धा और भक्ति से सिर झुकाया, और नम्रता पूर्वक वन्दना नमस्कार कर उनके चरणों में बैठ गया, आचार्य श्री के अमृतोपदेश को सुन कर अपनी इच्छा को प्रगट किया।

आचार्यवर ! मुझे आप श्री यह भागवती दीक्षा प्रदान कर अनुग्रहीत करे, ताकि मैं भी इस भव सागर से पार उतरने में समर्थ हो सकूं, आचार्य श्री ने सत्पात्र को देखकर राजा विपुल वाहन को मोक्ष प्रदायक दीक्षा प्रदान की, और राजा विपुल वाहन ने सर्व सावद्य योग का प्रत्याख्यान करके दीक्षा को अङ्गीकार किया। जो राजा अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हो रथ पर चढ़ कर शत्रुओं पर विजय करने जाता था, वही आज संयम रूपी रथ पर चढ़कर चारित्ररूपी अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित है, यह राज मुनि अंतरंग और बाह्य शत्रुओ पर विजय पाकर दीक्षा का विधि पूर्वक पालन कर रहा है।

राज मुनि ने बीस स्थानकों की भक्ति पूर्वक आराधना करके अपने तीर्थङ्कर नाम कर्म का और भी अच्छी तरह पोषण किया इस प्रकार दुष्कर चारित्र पालते हुए उन पर अनेकानेक घोर उपसर्ग, 'आये' परन्तु दृढ़ प्रतिज्ञ और साहसी मुनि इन से ज़रा भी विचलित न हुए, प्रत्युत उन उपसर्गों का स्वागत करते हुए उन्हें खुशी खुशी सहन करते रहे। इस प्रकार अपना अवशिष्ट

जीवन अनेक प्रकार के तप करके दुस्सह चरित्र का समय पूर्वक पालन किया। अन्त में अनशन व्रत करके अपनी आयुष्य को खपाया एव मृत्यु के बाद आनत नाम के नवमें देवलोक को प्राप्त किया।

भगवान का अवतरण

श्रावस्ती नगरी का राजा भी इन्द्र के समान प्रबल प्रतापी और वीर था। इक्ष्वाकु कुल रूपी क्षीर सागर का मानो चन्द्र ही था, सर्वत्र अरियों (शत्रुओं) को जीतने के कारण उसका 'जितारि' नाम सार्थक ही था, उस समय के राजाओं में उसके समान या उससे बढकर कोई भी राजा विद्यमान न था जो भी छोटे बडे राजा थे वे सब उसी के आधीन थे। इसके ऊचे राजमहल पर फहराती हुई पताका डके की चोट से यह कह रही थी कि इस नगरी और इस राजा से बढकर और कोई नगरी और राजा नहीं है। जैसे महल के अन्दर प्रवेश करनेवाले ग्रहों से गृहपति—सूर्य शोभायमान होता है, वैसे ही पैदल प्रवेश करते हुए राजाओ से यह राजा शोभा पाता था। जिस प्रकार अनेक नदिया समुद्र मे जाकर आश्रय लेती है, उसी प्रकार नाना प्रकारकी धन राशियो और सद्गुणो ने उसके यहा आश्रय ग्रहण कर लिया था।

यह दुर्जनो का दमन करने वाला होने पर भी शरणागत वत्सल था वह शत्रुनाशक भले ही हो, परन्तु प्रजा का सच्चा पालक था, यदि वह कृपण था,तो बुरे व्यसनों के करने मे था, परन्तु अच्छे अच्छे कार्यों और सुपात्रो में दान देने को उदार ही था, पर-स्त्री और अन्याय आदि दोषों से मुह फेरने वाला ही था,

परन्तु शत्रुओं के सन्मुख तो हमेशा डट जाने वाला ही था, दुराचारियों को दण्ड देता था तो सदाचारी और निर्धनों को धन देता था, वह शस्त्रधारी भले ही था परन्तु था दयालु। शक्तिमान होने पर भी क्षमावान था, विद्वान होने पर भी अभिमान रहित था और युवान होने पर भी जितेन्द्रिय व संयमी था। इस प्रकार राजा जितारि, साक्षात् धर्ममूर्ति की तरह कोई अधर्म कारी वचन न बोलता था, न चिन्तवन करता था, नहीं आचरण करता था।

जहां का राजा ऐसा प्रजापालक, धर्मात्मा और दयालु हो, वहां की प्रजा को क्या कष्ट हो सकता है ? वे उस राजा की छत्र छाया में अपने व्यापार-वाणिज्य, कला-कौशल की वृद्धि करते हुए आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे।

राजा जितारि जिस प्रकार रूप, गुण और संपत्ति से युक्त था उसके अनुरूप ही उसकी रूप सौन्दर्य युक्त सेना नामक महिषी थी, मानो स्वर्ग की अप्सरा ही हो ऐसी रूपवती महिषी के साथ राजा 'जितारि' दूसरे पुरुषार्थों को बाधा पहुँचाये बिना योग्य अवसर पर उद्यानों, जलसरोवरो और राजमहलों में क्रीड़ा करता था।

एक दिन की बात है कि राजा विपुलवाहन का जीव नव में देवलोक से अपना आयुष्य पूर्ण करने के अन्तर वहां से च्यव कर फाल्गुन मास की शुक्ल अष्टमी के दिन सेना देवी के उदर में अवतारित हुआ, उस समय चन्द्रमा का योग मृगसिर नक्षत्र में आया हुआ होने के कारण अत्यन्त शुभ समय था। उस समय तीनों

लोकों में विद्युत् की तरह महान् उद्योत हुआ और नारकी जीवों को भी क्षणभर के लिये अत्यन्त सुख प्रतीत हुआ।

माता को आये हुए चौदह स्वप्न

अभी कुछ रात बाकी थी, चिड़ियो का चुह चुहाना अभी प्रारम्भ न हुआ था, सुखकारी मन्द मन्द पवन चल रहा था, सेनादेवी, अर्द्ध निद्रित अवस्था मे अपनी शय्या पर सोई हुई थी, तो उसे अपने मुह में प्रवेश करते हुए चौदह शुभ स्वप्न दिखाई दिये।

पहिले स्वप्न में क्षीर सागर के समुद्र एवं मोतियो के हार के समान सफेद, चान्दी के पर्वत तथा चन्द्रकिरण के समान निर्मल शरद ऋतु के मेघ की तरह उज्ज्वल और गर्जना करने वाला, अनेक शुभ लक्षणों से युक्त चार दान्तवाला तथा जिसके गण्ड-स्थल से निरन्तर मद झर रहा है तथा जो ऊँचाई में कैलाश की भ्राति उत्पन्न कर रहा है ऐसा गजेन्द्र सेनादेवी ने अपने मुह मे प्रवेश करते हुए देखा।

दूसरे स्वप्न मे महारानी ने स्फटिक मणि-पर्वत के बड़े गोले की तरह उज्ज्वल, पुष्ट और उच्च स्कंध वाले, लम्बी और सीधी पूंछ वाले, शुद्ध सुकुमाल रोम राजी से स्निग्ध चमड़ी वाले, तथा विद्युत युक्त शरद ऋतु के मेघ समान वर्ण एवं स्वर्ण के घूघरों की माला से युक्त उन्नत वृषभ को अपने मुख में प्रवेश करते हुए देखा।

तीसरे स्वप्न मे—पीली आखे, लम्बी जीभ और कुंकुम की तरह अतिरिक्त और चपल केसरोंमे युक्त तथा सुरता सहित, शूर-वीरों की जयपताका के समान पूंछ वाले सिंह को देखा।

चौथे स्वप्न में कमल समान नेत्र वाली तथा कमल में निवास करने वाली ऐसी शोभा युक्त लक्ष्मी को देखा जिसके दोनों ओर दिग्गजेन्द्र अपनी पुष्ट सूंडों से पूर्णकलश उठा कर उसके मस्तक पर डालते हुए शोभा दे रहे हैं।

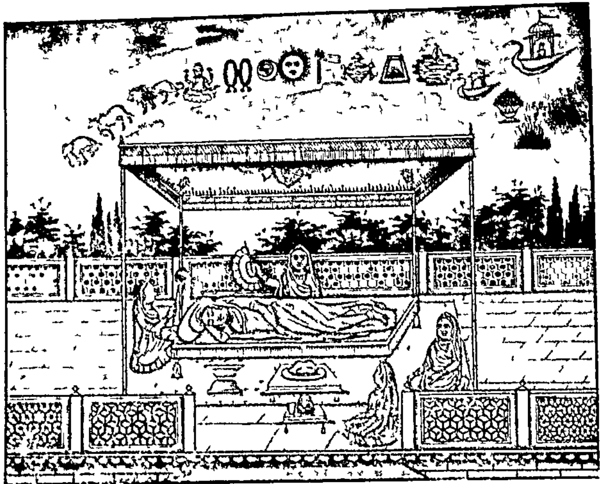
पांचवें स्वप्न में—देव वृक्षों के तथा समस्त ऋतुओं के विविध फूलों से गुथी हुई सीधी, और धनुर्धारियों के चढ़ाए हुए धनुष के समान लम्बी तथा अपनी सुगंधी से चारों दिशाओं को रंजित करती हुई 'फूलमाला, को अवतरित होते हुए देखा ।

छट्ठे स्वप्न में—चांदी के दर्पण की तरह निर्मल और गौ के दुग्ध फेन की तरह उज्ज्वल, अपने ही मुख की भ्रान्ति उत्पन्न करने वाले, तथा आनन्द के कारण रूप, एव अपनी कांति से समस्त दिशाओं को प्रकाशित किये हुए नेत्रानन्दकारी 'चन्द्रमण्डल, को देखा ।

सातवें स्वप्न में—सेना देवी ने रात में भी दिन का भ्रम कराने वाले, तेज से जाज्वल्यमान, सम्पूर्ण अन्धकार नाशक, एवं विस्तृत होती हुई किरणों की कान्ति से देदीप्यमान रक्त वर्णमय सूर्य को देखा ।

आठवें स्वप्न में—चपल कानों से जैसे हाथी सुशोभित होता है, वैसे घूघरियों की पंक्ति के भार वाली चलायमान पताका से युक्त महाध्वज को देखा ।

नवमें स्वप्न में—विकसित कमलों से अर्चित हुए मुख भाग वाला तथा समुद्र मन्थन के अनन्तर निकले हुए सुधा कुम्भ एवं अमृत समान जल से परिपूर्ण, मानो सर्व मंगलों का यहीं एक स्थान है ऐसा स्वर्ण कलश देखा ।



संभवनाथ भगवान की माता उनके गर्भ मे आने के समय चोदह स्वप्न देख रही है।

दसवें स्वप्न में—सूर्योदय से विकसित–मानों मृदु हास्य कर रहे हैं ऐसे कमलो के समूह से शोभित, नेत्रों को आनन्द देने वाले ऐसे पद्म सरोवर को देखा जिसके कमलों पर अनेक भ्रमर वृन्द गुंजार कर रहे थे।

ग्यारहवें स्वप्न में—हजारों नदियों का जल जिस में आ रहा है, जिसकी छोटी बड़ी लहरें उठ कर किनारे तक कलोल करती जाती हुई हृदय मोह रही हैं, तथा पृथ्वी मे फैली हुई शरद् ऋतु के मेघ की लीला को जो चुराये हुए प्रतीत होता है, मानो ऊंची तरगों रूपी हाथ से नृत्य कर रहा हो ऐसी चचल तरगों के समूह से चित्त को आनन्द देने वाला क्षीर समुद्र देखा।

बारहवें स्वप्न में—उदय होने वाले सूर्य की तरह दिव्य कान्ति वाले ऐसे रत्न निर्मित विमान को देखा जो ऐसा जान पड़ता था कि जब भगवान देवयोनि मे थे तब वह भी वहीं रहता था उसी पूर्व स्नेह का स्मरण करके वह आया है।

तेरहवें स्वप्न मे—रानी ने किसी कारण से एकत्र हुए तारों की तरह, मानों निर्मल कान्ति ही एक स्थान पर एकत्रित हो गई हो या पाताल के मणिधरों का मणिसमूह ही हो ऐसे विविध श्रेष्ठ रत्नों को मेरू पर्वत के समान ऊंचे लगे हुए रत्न पुञ्ज को देखा।

चौदहवे स्वप्न में—लाल, पीले, रंग की निकलती हुई ऊंची ज्वालाओं युक्त ऐसी निर्धूम अग्नि को देखा जो ऐसी प्रतीत होती थी मानो तीन लोक में जितने तेजस्वी पदार्थ हैं वे सब इसी में एकीभूत हो गये हों।

महाराजा जितारी इन शुभ स्वप्नों का वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त प्रफुल्लित हुआ और अपनी विशाल बुद्धि से उन स्वप्नों

को विचार कर महिषी से कहा—देवी ! इन स्वप्नों के प्रभाव से तुम्हारे त्रिलोक वन्दनीय पुत्र रत्न होगा।

इन्द्रों का आकर स्वप्न फल कथन

इधर देवताओं के अधिपति इन्द्रों के आसन कम्पायमान हुए और वे उपयोग से तीसरे तीर्थङ्कर का च्यवन जानकर तुरन्त सिंहासन से उतरे और श्रद्धा एवं भक्ति से भगवान की स्तुति की, तदन्तर समस्त इन्द्र एकत्रित हो उस स्थान पर आये जहां कि भगवान का अवतरण हुआ था, वहां वे सेना देवी को नमस्कार कर उनको आये हुए चौदह स्वप्नों का फल इस प्रकार कहने लगे—

"स्वामिनी ! आपको जो चौदह स्वप्न आये हैं, उन शुभ स्वप्नों के फल स्वरूप इस अवसर्पिणी काल में तुम्हें ऐसा पुत्र रत्न होगा, जो समस्त जगत का स्वामी और तीसरा तीर्थङ्कर होगा। देवताओं ने स्वप्नों का विस्तृत फल बतलाते हुए कहा—देवी ! प्रथम स्वप्न में आपने गजेन्द्र देखा है इससे आपका पुत्र महान पुरुषों का भी गुरु और बल का स्थान रूप होगा। दूसरे स्वप्न में आपने वृषभ देखा है इससे तुम्हारी कूख से मोहरूपी कीच में फंसे हुए धर्मरूपी रथ को निकालने में समर्थ पुत्र होगा। तीसरे स्वप्न में आपने केसरी सिंह देखा है, इससे आपका पुत्र पुरुषों में सिंह के समान धीर, निर्भय, वीर और अस्खलितपराक्रम वाला होगा।

हे जगत माता ! चौथे स्वप्न में तुमने 'लक्ष्मी देवी, देखी है, इससे आपका पुत्र तीन लोक की साम्राज्य लक्ष्मी का पति होगा।

पाचवें स्वप्न में 'पुष्प माला, देखी है, इससे आपका पुत्र पुण्य दर्शन वाला होगा, तथा समपूर्ण विश्व उनकी आज्ञा को माला की तरह सिर पर धारण करेगा। छट्ठे स्वप्न में आपने पूर्ण चद्र देखा है इससे आपका पुत्र मनोहर और नेत्रों को आनन्द देने वाला होगा। सातवे स्वप्न मे तुमने 'सूर्य, देखा है, इससे आपका पुत्र मोहरूपी अन्धकार को नष्ट कर जगत मे उद्योत करने वाला होगा, और अज्ञानान्धकार को नाश कर ज्ञानका प्रकाश फैला-यगा। मातेश्वरी आठवे स्वप्न में आपने 'महाध्वज, देखा है, इससे आपका पुत्र आपके वंश में महान् प्रतिष्ठा वाला और धर्मध्वजी होगा। नवमे स्वप्न में आपने 'पूर्ण कुम्भ, देखा है, इससे आपका पुत्र सर्व अतिशयो से पूर्ण अर्थात सर्व अतिशय युक्त होगा। दसवें स्वप्न में आपने 'पद्म सरोवर, देखा है, इससे आपका पुत्र ससाररूपी जगल में पाप ताप से तपते हुए मनुष्यों का ताप हरेगा। ग्यारवें स्वप्न में आपने 'क्षीर समुद्र, देखा है इससे आपका पुत्र अधृष्य—नहीं पहुचने योग्य होने पर भी लोग उसके पास जा सकेंगे।

हे देवी! बारहवें स्वप्न मे आपने अलौकिक 'विमान, देखा है, इससे आपके पुत्र की वैमानिक देवता भी सेवा करेंगे। तेरहवे स्वप्न में आपने 'रत्न पुंज, देखा है, इससे आपका पुत्र सर्व गुण सम्पन्न रत्नों की खान के समान होगा।

स्वामिनी! चौदहवें स्वप्न में आपने जाज्वल्यमान 'निर्धूम अग्नि, को देखा है, इससे आपका पुत्र अन्य तेजस्वियों के तेज को फीका करने वाला होगा। देवी! आपने चौदह स्वप्न ही देखे हैं इससे आपका पुत्र चौदह राजलोक का स्वामी होगा।

इस प्रकार स्वप्नों का फल सुना कर इन्द्रों ने सेना देवी को नमस्कार किया और अपने अपने स्थानों पर चले गये। अपने स्वप्नों का इस तरह शुभ फल सुनकर सेना देवी ऐसी प्रसन्न हुई जैसे मेघों की गर्जना से मयूरी प्रसन्न होती है। सेना देवी ने अवशिष्ट रातका समय जागृत अवस्था में ही व्यतीत कर दिया।

हीरे की खान जैसे हीरे को, अरणि का वृक्ष जैसे अग्नि को धारण करता है उसी प्रकार उस दिन से सेना देवी ने बड़े सत्त्ववान और पवित्र गर्भ को धारण किया, एवं गंगा के जल में सुवर्ण कमल की तरह सेना देवी के उदर में वह गर्भ गूढ़ रीति से बढ़ने लगा।

भगवान का जन्म

अब तो सेना देवी के अंग प्रत्यंग में विशेष परिवर्तन होने लग गया, जैसे शरद् ऋतु के समय सरोवर के कमल विशेष विकसित होते हैं वैसे ही उस समय देवी के नेत्रों में विशेष विकास प्रतीत होने लगा। गर्भ के अनुभाव से प्रतिदिन देवी के अंगों में लावण्य लक्ष्मी की वृद्धि होने लगी, स्तनों में पुष्टता और गति में मतवाले हाथी की तरह मंदता अधिकाधिक बढ़ने लगी उत्तम गर्भ के प्रभाव से महारानी सेना देवी और भी अधिक विश्व-वत्सला तथा संसार की प्रसन्नता का कारण हो गई।

इस प्रकार नवमास और साढ़े सात दिन व्यतीत होने पर मगशिर मास की शुक्ल चतुर्दशी को, जब कि सम्पूर्ण ग्रह उच्च स्थान पर आये हुए थे, और मृगशिर नक्षत्र में चन्द्र आया हुआ था, ऐसे शुभ समय में जरायु और रुधिर आदि दोषों से रहित अश्व-लञ्छन वाले सुवर्णवर्णी पुत्र को देवी ने इस प्रकार जन्म दिया।

इन्द्र का आगमन

उस समय सब इन्द्रों के आसन कम्पित हुए और इन्द्र ने अवधि ज्ञान का उपयोग किया और तीर्थङ्कर भगवान का जन्म जानकर शक्र इन्द्र ने उस दिशा की ओर सात आठ कदम आगे बढकर तीर्थङ्कर देव को नमस्कार किया।

इसके बाद घंटों की महान आवाज से तथा सेनापतिओं द्वारा की गई घोषणा से देवता एकत्रित हो गये और भगवान का जन्मोत्सव करने के लिये उत्सुक हो इन्द्र के साथ चलने को उद्यत हो गये। इन्द्र ने तत्काल आभियोगिक देवताओं से पालक नामका असभाव्य और अप्रतिम विमान तैयार कराया, और एकत्रित हुए देवताओं तथा अपने परिवार सहित पालक विमान में बैठकर भगवान के जन्मोत्सव के लिये रवाना हुआ।

शक्र इन्द्र का पालक विमान जैसे जैसे नन्दीश्वरद्वीप और भरत क्षेत्र की ओर आ रहा था, वैसे ही वह सकुचित होता जा रहा था, इस प्रकार इन्द्र ने अपनी विक्रिया लब्धि के बल से सूतिका गृह के पास आकर उसे बहुत ही छोटा बना लिया। और वहाँ पहुँचकर सिंहासन पर बैठे ही बैठे इन्द्र ने छोटे विमान सहित सूति का गृह की प्रदक्षिणा की और बाद में इन्द्र ने इशान दिशा में उस विमान को छोड कर हर्ष चित्त हो भगवान के वासगृह में प्रवेश किया। भगवान के दर्शन होते ही उनको श्रद्धा और भक्ति से नमस्कार किया, एव जिनेश्वर तथा उनकी माता को तीन प्रदक्षिणा दी और पाच अगो से पृथ्वी को स्पर्श कर बार बार नमस्कार किया। तथा तीर्थङ्कर देव की माता

से कहा—देवी ! मैं देवलोक का इन्द्र हूँ और भगवान का जन्मोत्सव करने के लिये आया हूँ अतः आप किसी प्रकार का भय न करें। इतना कह कर इन्द्र ने भगवान की माता पर अवस्वापनिका नामक निद्रा का प्रयोग किया जिससे माता निद्रित वेहोशी की दशा में हो गई, और उसके पास वगल में भगवान की प्रतिकृति का एक पुतला वना कर रख दिया।

इन्द्रो द्वारा मेरु पर्वत पर जन्माभिषेक

इसके वाद इन्द्र ने अपने पांच स्वरूप किये एक स्वरूप से भगवान को हाथों में उठाया, दूसरे दोस्वरूपों से दोनों ओर खड़े होकर चंवर ढ़ोलने लगा, एक स्वरूप से मस्तक पर छत्र किया और एक स्वरूप से चोवदार की तरह व्रज धारण करके आगे आगे चला, इस प्रकार पांच स्वरूपों से भगवान को लेकर आकाश मार्ग द्वारा तुरन्त मेरु पर्वत के शिखर पर ले आये देवता वृन्द भी जय जय ध्वनि करता हुआ उन के साथ ही वहां पर आया।

वहां पर अति पांडुकवला नामक शिला जो कि अर्हन्त भगवान के स्नात्र के योग्य होती है, उस पर रहे हुए सिंहासन पर जगत्पति को शक्र इन्द्र गोद में लेकर बैठा।

जिस समय शक्र इन्द्र मेरु पर्वत पर पहुँचा उस समय, अन्य त्रेसठ इन्द्रों के आसन कम्पायमान हुए और इधर 'महा-घोषा, नामका घंटा भी वजा, इन्द्रों ने अवधिज्ञान से तीर्थङ्कर भगवान का जन्मजानकर वे भी मेरु पर्वत पर आये।

सब इन्द्रों के आजाने के बाद अच्युतेन्द्र ने भगवान का

जन्मोत्सव मनाने के लिये उपकरण लाने को 'अभियोगिक, देवताओं को आज्ञा दी, और वे तत्काल ईशान कोण में गये और वैक्रियसमुद्घात द्वारा उत्तमोत्तम पुद्गलों का आकर्षण किया इस तरह कुल मिला कर एक करोड और साठ लाख कलश पच्चीस योजन ऊँचे, बारह योजन चौडे और एक योजन नाली के मुह वाले तैयार हुए।

जिस तरह आठ प्रकार के पदार्थोंसे कलश तैय्यार हुए उसी तरह आठ प्रकार के पदार्थों से झारिया, दर्पण, रत्न के करडीये, सुप्रतिष्टक डिब्बिया, थाल, पात्रिका, और पुष्पो की चगेरिया भी कलशो की संख्या के अनुसार तैय्यार की।

फिर वहा से निकल कर लौटते समय मागध आदि तीर्थों से मिट्टी क्षीर समुद्र, तथा गगादि महानदियो से जल, क्षुद्र हिमवत पर्वत से सिद्धार्थ पुष्प, श्रेष्ठ सुगन्धित द्रव्य तथा अमूल्य औषधिया उसी पर्वत के पद्म, नामक सरोवर से कमल, भद्रशाल वन से उत्तमोत्तम पुष्प आदि द्रव्य लेकर वे वहा पर पहुचे।

वहा पर पहुचने के बाद उन्होने भक्ति से सर्व सुगन्धित द्रव्य डाल कर तीर्थ जल को सुगन्धमय कर दिया। अनन्तर अच्युतेन्द्र ने सर्व प्रथम पारिजात पुष्पों की कुसुमाजली रख कर देवताओं द्वारा लाये हुए कुम्भों के जल से भगवान का अभिषेक किया।

अच्युतेन्द्रसे किये गये प्रभुके स्नात्र के समय देवता गण भगवान के अभिषेक से अत्यन्त आनन्दित हो मनोहर वाद्य गीत और नृत्य करने में प्रवृत हो गये। इधर भगवान को स्नान कराने के बाद भगवान का सुगन्धित काषाय वस्त्र से शरीर पोंछा और फिर गोशीर्ष चन्दन का लेप किया, उत्तमोतम सुगन्धित पुष्प चढाये,

रत्नों की चौकी पर चांदी के चावलों से, दर्पण, वर्धमान, कलश, मात्स्ययुगल, श्रीवत्स, स्वस्तिक, नंदावर्त और सिंहासन इन अष्ट मंगलों का आलेखन किया। तरह तरह के सुगन्धित धूपों से चारों ओर सुगन्धि ही सुगन्धि फैला दी, इस प्रकार देवताओं सहित तरह तरह के नृत्य करके भगवान की स्तुति की और श्रद्धा एवं भक्ति से उनकी आरती उतार कर उन्हें सविनय प्रणाम किया।

इसके पश्चात शक्रेन्द्र, के अतिरिक्त अन्य ६२ इन्द्रों ने भी उक्त प्रकार से जगत को पवित्र करने वाली स्नात्र प्रभु को कराई, चारों ओर पुष्प वृष्टि की, भगवान को मुकुट कुण्डल और छत्र धारण किया, और खुशी के उल्लास में मग्न हो वाद्य, गान और नृत्य द्वारा भगवान की स्तुति की, कि हे भगवन्! आज हम आप का दर्शन कर कृत कृत्य हुए हैं, आप स्वयं फिर जन्म ग्रहण करने वाले नहीं, आप संसार के प्राणियों को इस भवसागर से पार उतारने मे समर्थ हैं, हे नाथ! आपके गुणों की प्रशंसा हज़ार जिह्वायें भी हज़ार वर्ष तक समाप्त नही कर सकती।

शक्रेन्द्र द्वारा जन्मोत्सव और स्तुति

तत्पश्चात् 'ईशानेन्द्र, ने 'शक्रेन्द्र' की तरह वैक्रिय लब्धि से पांचरूप बनाये, एक स्वरूप से भगवान को गोदी में लिया, एक स्वरूप से छत्र धारण किया, दो स्वरूपों से दोनों ओर चंवर लिये और एक रूप से वज्र लेकर आगे खड़ा हुआ इस के बाद शक्र इन्द्र ने भगवान के चारों ओर स्फटिक मणि के बड़े बड़े सींग वाले चार बैल बनाये उनके सींगों के अग्रभाग से फव्वारों की

तरह मनोहर जल की धारायें निकली, जो चारों दिशाओं से भगवान पर पड़ने लगी इस प्रकार शक्रेन्द्र ने अति भक्ति से दूसरे इन्द्रों द्वारा की गई स्नात्र से विलक्षण विधि से प्रभु का स्नात्र महोत्सव किया।

नन्दीश्वर द्वीप में महोत्सव

प्रभु के निवास स्थान से निकल कर 'शक्रेन्द्र नन्दीश्वरद्वीप में गया, शेष इन्द्र तो मेरु पर्वत से ही सीधे नदीश्वर द्वीप में चले गये थे. वहा तरह तरह की मणियों की पीठिकावाले चैत्यवृक्ष और इन्द्र ध्वज से अंकित चार द्वार वाले मन्दिर में प्रवेश किया, और सबने मिलकर शाश्वती प्रतिमाओं का अष्टाह्निका महोत्सव किया, इसी प्रकार वहा दधिमुख नाम के पर्वतों पर मन्दिरो से विराजमान वृषभ, चन्द्रानन, वारिसेण और वर्द्धमान की शाश्वत अर्हन्त प्रतिमाओ का शक्रेन्द्र के दिक्पालों ने अष्टाह्निका महोत्सव किया। इस प्रकार वहा पर जहा जहा शाश्वत प्रतिमाए विराजमान था, उन सब की अष्टाह्निका महोत्सव पूर्वक सुर तथा असुरों ने पूजा—स्नात्र आदि कर अपने को कृत्यकृत्य किया। इस प्रकार नंदीश्वर द्वीप में महोत्सव करके सभी देवता अपने अपने स्थानों को चले गये।

राज महोत्सव और नामकरण

इधर प्रात काल होने पर जितारी राजा ने पुत्र रूप में आये हुये जगत्पूज्य अरिहंत भगवान का बड़ा जन्मोत्सव किया। सम्पूर्ण-नगरी में ही राजमहल की तरह घर घर और गली गली में महान उत्सव किया गया।

राजा 'जितारि ने पुत्र जन्म की खुशी में कैदियों के बंधन छुड़वा दिये, प्रजा का कर माफ कर दिया, दीन और दुःखियों को द्रव्य देकर सन्तुष्ट किया, अपने राज्य में घी और अन्न आदि भोज्य सामग्री को सस्ता बेचने के लिये घोषणा कराई और सस्ते बेचने से होने वाली हानि को राजकोष से पूरा करने की उदारता की। समस्त नगरी में सफाई कराकर सुगन्धित जल छिड़कवाया हाट, बाजार गलियों और सड़कों को तरह तरह के चित्रों और ध्वजा पताकाओं से सुशोभित कराया। पृथ्वी को तरह तरह के रंग की मिट्टी से विचित्र कराया, बड़ी बड़ी पुष्प मालाओं के लटकवाने से वह नगरी इन्द्र पुरी के समान ही प्रतीत होने लगी, तरह तरह के सुगन्धित पदार्थों की सुगन्ध से चित हर्षोन्मत होने लगा कोई खुसी से नाच रहा है कोई प्रभु की स्तुति गाने में लगा हुआ है, स्थान स्थान पर तरह तरह के बाजे बज रहे हैं, और कहीं तरह तरह के खेलों का लोग आनन्द उठा रहे हैं। इस प्रकार सारी नगरी एक सिरे से दूसरे सिरे तक जगमगा उठी और चारों तरफ आनन्द ही आनन्द छा गया।

इस तरह राजा और प्रजा के आनन्द की कहीं सीमा न थी, यदि राजा सुपात्रों को दान दे रहा था तो राजा को भी अपने बन्धुओं और कि अन्य राजाओं से भेंट नजराने पहुँच रहे थे इस प्रकार उस राज में कई दिन तक भगवान के जन्म की खुशी में मङ्गल उत्सव होता रहा।

जिस समय प्रभु गर्भ में थे, उस समय 'शंबा, नामक धान्य 'जो एक प्रकार के पहले लम्बे और दानेदार फली की

तरह था, अधिक मात्रा में हुआ था इस लिये प्रभु का नाम संभवनाथ, रख दिया।

'भगवान का बाल्यकाल,

इन्द्र ने जिन पाच अप्सराओं को धाय कर्म के लिये प्रभु के पास नियुक्त किया था, वे प्रभु भक्ति के कारण हर समय शरीर की छाया की तरह भगवान के निकट ही रहती थीं, उनके द्वारा सावधानी से लालन पालन किये गये प्रभु दूज के चाद की तरह वृद्धि पाने लगे।

कभी कभी प्रभु गोदी से उतर कर निर्भयता से भ्रमण करने लगते, धात्रिया उन्हे पकडने के लिये हाथ फैलाती, तो वह बाल सिंह की तरह दूसरी तरफ हो जाते, इस प्रकार वह धात्रिया सिंहनी की तरह हापने लगती।

भगवान यद्यपि तीन ज्ञान के धारक थे, तथापि वे अपनी चेष्टा बताने के लिये रत्न मणिमय भूमि पर पडे हुए चन्द्र के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने के लिये अपना हाथ फैलाते थे। इस प्रकार तरह तरह की बाल्य कालीन चचल क्रीडाओं से सबका मन मोहने लगे।

अपनी मधुर मुसकान, और तरह तरह की चित्ताकर्षक अठ खेलियों द्वारा अपनी शिशु अवस्था से ही सबको आनन्द देते थे, स्वर्गलोक के देवता भी स्वर्ग मे आसर्पित हो उनमे आनन्द विनोद करने के लिये आ जाते, और मनुष्य रूप धारण कर उनकी समानवय के होकर प्रभु से क्रीडायें करते, सचतो यह है कि उन के साथ क्रीडा करने मे और कौन समर्थ हो सकता है ? कई

देवता प्रभु के आगे मोर का रूप बनाकर नाचते, कोई हंस का रूप धर कर उनके आस पास घूमते, कोई कोयल बन कर उन के समीप मधुर आवाज करते, कोई हाथी की तरह लम्बी ग्रीवा करके दौड़ते, कोई उन्हें स्पर्श करने की इच्छा से गेंद का खेल खिलाते, कोई अपनी आंखों को तृप्त करने के लिये भिन्न भिन्न रूप बना कर उनके चारों ओर घूमते, कोई घोड़ा बन कर भगवान को अपने पर बैठाता, कोई भगवान के दिल को बहलाने के लिये उनसे मल्ल युद्ध करते और जब लीलामात्र में ही देवता गिर जाते तो वे रक्षा करो, रक्षा करो, पुकारते और भगवान भी उन पर योग्य कृपा करते थे, इस प्रकार विचित्र क्रिड़ाओं तथा तरह तरह की बाल लीलाओं से भगवान ने शिशु अवस्था को इस प्रकार उलङ्घन किया जिस तरह प्रदोष काल को चन्द उलंघन करता है।

'भगवान की यौवनावस्था'

जिस प्रकार बालसूर्य अपनी बाल्य अवस्था को उलंघन कर दिन के मध्य भाग में आता है, उसी प्रकार भगवान् भी बाल्य अवस्था को अतिक्रमण करके यौवनावस्था में आये, भगवान की आयुष्य वृद्धि के साथ रूप, लावण्य और कुशलता ने भी स्पर्धा से वृद्धि की।

भगवान के चित्ताकर्षक शरीर का सौन्दर्य अवर्णनीय था। प्रभु यौवनावस्था में आ गये तो भी उनके पैर के तलुवे रक्त, उन्नत, समतल, कोमल, और प्रस्वेद तथा कम्प रहित थे, उनके अंगूठे सर्प के फण की तरह ऊंचे थे, जिस प्रकार सर्प के फण में

मणि शोभा देती है उसी प्रकार अगूठो के नाखून शोभा दे रहे थे, पैरों की अगुलिया अन्तर रहित और सरल थीं पैर कूर्म की तरह उन्नत स्निग्ध और लोम रहित थे, भगवान् की जघायें मृगी की तरह गोल, तथा जानु युगल पूर्णचन्द्र की तरह गोलाकार और मांस से पूरित था, कदली स्तम्भ की तरह कोमल, गोल और हाथी के सूढ की तरह पुष्ट जाघे शोभा दे रहे थे। कटिभाग दीर्घ, विशाल और कठिन था उदर वज्र की तरह पतला था और दक्षिणावर्त–नाभि अत्यन्त गम्भीर थी। उनका वक्षस्थल मेरु के भूतल समान तथा मध्य के आकाश की तरह विशाल दृढ और उन्नत था। स्कन्ध वृषभ के स्कन्ध की तरह शोभित थे। उनकी बाहु घुटने तक लम्बी एव नारकी जीवों के उद्धार करने में समर्थ थी। उनके हाथ कमल की तरह लाल एव छिद्र तथा स्वेद से रहित सुशोभित थे भगवान का कठ त्रिरेखा युक्त, भव्यात्माओं को मोक्ष मार्ग के रत्नत्रय समान तथा मुखरूपी पूर्ण कुभ के आधार की तरह शोभा पा रहा था। प्रभुका मुख चद्रमा की तरह निर्मल और कान्तिमान था। भगवान के होठ बिम्बफल की तरह लाल, और दान्त जिह्वारूपी गगा के तट पर रहने वाले हसों की तरह शोभा दे रहे थे। भगवान के कान स्कन्ध तक लम्बे लटकते हुए इस प्रकार शोभा दे रहे थे मानो रूप-लावण्य लक्ष्मी की क्रीडा के लिये यह हिंडोले हों। कमल के समान विकसित नेत्र कान तक पहुँचे हुये अत्यन्त शोभा दे रहे थे, मानो कर्णरूपी हिंडोले पर चढने के लिये वहा तक पहुँचे हो। उनका ललाट अष्टमी के चाँद की तरह शोभा पा रहा था। भगवान का मस्तक श्याम और स्निग्ध केशों से शोभित, अनुक्रम

से उन्नत तथा छत्र की तरह प्रतीत हो रहा था। उनका श्वास सुगन्ध मय था। इस प्रकार उन के सम्पूर्ण अवयव स्वभाव से ही शुभ लक्षणों से युक्त और कान्तिमान थे, शायद मेरुपर्वत ही कौतुक से पुरुष रूप धारण कर आया हो, इस प्रकार चार सौ धनुष ऊंचे और स्वर्ण समान कान्तिवाले भगवान यौवनावस्था में सर्व-नर नारी और सुरअसुरो के नेत्रों को आनन्दित कर रहे थे। निरंतर मलीनता रहित और स्वभाव से ही सर्वांग सुन्दर होने के कारण जगत्पति ऐसे शोभा पा रहे जिस प्रकार शरद ऋतु में बिना किसी बादल के चंद शोभा पाता है इस यौवनकाल में भी भगवान को इन्द्र अपने हाथ का सहारा देता, यक्ष चंवर ढ़ोरते, धरणेन्द द्वारपाल का कार्य करता और वरुण देव छत्र धारण करता था। 'भगवान की जय हो, भगवान चिरंजीव हों, इस प्रकार कहने वाले अनेक देवता उनके चारों ओर रहते थे, इस तरह अनेकानेक ऋद्धियों और समृद्धियों से शोभित भगवान संभवनाथ सुख पूर्वक विचर रहे थे।

विवाह और राज्य

राजकुमार संभवनाथ यौवनावस्था में आनन्द से कालयापन कर रहे थे, युवक वयस्क ओजपूर्ण रस ने उनके शरीर को ऐसा खिला दिया था, जिससे कामदेव भी वहां आने को लज्जित सा हो रहा था, भगवान पर जिसकी भी दृष्टि पड़ जाती, उसकी आंखें वहीं गढ़ी रह जाती।

एक दिन रूप यौवन सम्पन्न राजकुमार प्रभु को माता पिता ने देव कन्याओं के समान रूप लावण्य युक्त राज कन्याओं से

विवाह करने के लिये निवेदन किया—'भगवान यद्यपि विषयों में विरक्त और भव-ससार से विमुख थे, तथापि दूरदर्शी भगवान ने अवधिज्ञान द्वारा भोग कर्म अवशिष्ट जान कर माता पिता की आज्ञा को शिरोधार्य किया और राज कन्याओं से पाणिग्रहण करना स्वीकार कर लिया, प्रभु की सम्मति और स्वीकृति के पश्चात् महाराजा जितारिने विवाह महोत्सव प्रारम्भ किया। इस शुभ अवसर पर इन्द्र ने भी प्रत्यक्ष आकर विवाहोत्सव में पूर्ण सहयोग दिया, विवाहोत्सव के लिये एक सुन्दर मण्डप तैय्यार किया गया देवतागण इस महोत्सव में सम्मिलित हो तरह तरह के नृत्य, वाद्य करने लगे, 'हाहा' हूहू, नाम के गधर्व गभीर मृदग बजाकर मधुर स्वर से गायन करने लगे, रंभा, तिलोत्तमा आदि अप्सराने नृत्य करने लगी, और कुलीन स्त्रिया ऊचे स्वर से धवल मगल गाने लगी, इस प्रकार मगल कृत्यों से विधि पूर्वक प्रभु का विवाह हो गया।

तत्पश्चात् प्रभु किसी समय नदनवन जैसे उद्यानों मे किसी समय रत्नगिरि के शिखर जैसे क्रीडा पर्वतो में, किसी समय अमृत कुड जैसी क्रीडा वावलियों मे, और किसी समय स्वर्ग के विमान की तरह शोभित चित्र शालाओं मे अपनी हजारो रमणीय रमणियों के साथ क्रीडा करने लगे।

इस प्रकार कुमार अवस्था मे विविध भोगों को भोगते हुए भगवान को पन्द्रह लाख पूर्व निर्गमन हुए।

प्रभु सभवनाथ के पिता महाराजा जितारि को अब ससार से वैराग्य उत्पन्न हुआ, तब महाराजा जितारिने प्रभु को आग्रह करके अपने राज्य पर इस प्रकार स्थापित किया, जिस तरह

मुद्रिका में रत्न स्थापित किया गया हो, और स्वयं राजा जितारि ने सद्गुरु के चरणों में जाकर दीक्षा ली और मोक्ष साधन में लग गया।

महान पराक्रमी संभवस्वामी ने पिताश्री के आग्रह को मान देकर राज्य श्री को स्वीकार किया, और सम्पूर्ण पृथ्वी की रक्षा करने लगे, प्रभु के प्रभाव से उनके राज्य में प्रजा के अन्दर इती भीति, व्याधियां दुःख और दुर्भिक्ष का नाम भी मिट गया, अनेक राजा भी उनके आधिन होकर उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करने लगे सर्वत्र शान्तिका साम्राज्य था, भगवान को किसी पर कभी भृकुटि भी नहीं चढ़ानी पड़ी फिर धनुष्य चढ़ाने की तो बात ही क्या ? इस प्रकार प्रजा उनकी छत्र छाया में सुख पूर्वक काल-यापन कर रही थी, इतना ही नहीं बल्कि उसके साथ व्यापार वाणिज्य और कला कौशल की वृद्धि भी कर रही थी।

इस प्रकार प्रजावत्सल प्रभु को नीति, न्याय और नैपुण्य से प्रजा पालन करते हुए तथा भोग कर्म खपाते हुए चार पूर्वाङ्ग सहित ४४ लाख पूर्व निर्गमन हो गये।

वैराग्य

एक दिन तीन ज्ञान के धारक एवं स्वयं बुद्ध प्रभु संसार की स्थिति पर इस प्रकार विचार करने लगे। 'अहो ! इस संसार में विषय के स्वाद का सुख विष मिले हुए मिष्ट भोजन की तरह आरम्भ में मधुर और अन्त में अनर्थ करने वाला ही है, जैसे ऊसर भूमि में कठिनता से जल उपलब्ध होता है, उसी प्रकार इस असार संसार में प्राणियों को मनुष्य योनि कठिनता से ही

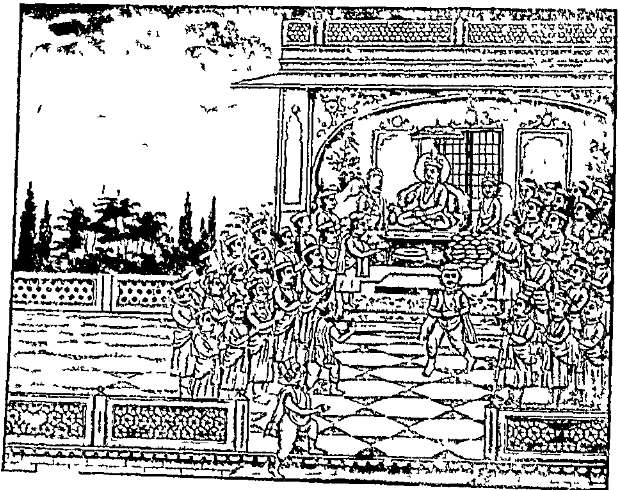
प्राप्त होती है, परन्तु आश्चर्य तो यह है कि ऐसे दुर्लभ मनुष्य जीवन को पाकर भी मूर्ख लोग विषय सेवन में इस प्रकार व्यर्थ गंवाते हैं, जैसे कोई मूढ अमृतरस को पैर धोने के काम मे लाता है। विषय सुख की लालसा मे मनुष्य अपना जीवन नष्ट कर डालता है, परन्तु कभी विषयों से तृप्ति नहीं होती, बल्कि विषय भोग की इच्छायें बलवती होती जाती हैं मनुष्य को जिन माता, पिता, भाई और बहिन, स्त्री और पुत्र पर गर्व होता है, उनके देखते ही देखते यमराज उनके प्राणो का हरण कर लेता है, परन्तु वे किसी प्रकार रचा नहीं कर सकते। मूर्ख मनुष्य अपने कर्मानुसार मृत्यु पाने वाले स्वजन सम्बन्धी को देख कर तो शोक करता है, परन्तु वह इस बात के लिये कभी शोक और चिन्ता नहीं करता, कि निकट भविष्य मे उसके साथ भी यही व्यवहार होगा, अष्टाङ्ग आयुर्वेद, सजीवनी औषधि और मृत्युञ्जय मन्त्र द्वारा सभी मृत्यु से रक्षा नहीं हो सकती, परन्तु मोहान्ध पुरुष अपने आप को अमर समझ कर तरह तरह के परिग्रह एकत्रित करता है, क्रोध, मान, माया और लोभ द्वारा अशुभ कर्मों को निरन्तर बाधता रहता है, और इसी कारण वह इस ससार चक्र से निकल नहीं पाता, कभी नरको में जाकर तरह तरह की वेदनायें पाता है, तो कभी तिर्यञ्चगति मे कष्टो को भोगता है, इस प्रकार जीव भिन्न भिन्न गतियो और योनियों मे भटकता रहता है, विपत्तियो के एक मात्र स्थान इस ससार में कहीं भी सुख और तृप्ति नहीं, सच तो यह है कि स्वर्गों के सुखो मे भी विषय की तृप्ति नहीं होती। इस प्रकार प्रभु के विचारों मे वैराग्य रस की लहरे उठने लगी, ससार से मोह के बन्धन टूट गये।

वैराग्य रस में निमग्न प्रभु के पास अपने कर्तव्य से प्रेरित लोकांतिक देवता आये हाथ जोड़ और नमस्कार कर भगवान से इस प्रकार प्रार्थना करने लगे हे जगत्पूज्य ! सर्वदर्शी स्वामिन् ! हे जगत्बन्धु ! सर्वज्ञदेव ! आप तीन ज्ञान के धारण करने वाले स्वयंबुद्ध भगवान् हैं, आपको बोध देना सूर्य को दीपक दिखाना ही है, हम तो केवल अपने कर्तव्य से प्रेरित होकर आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं, आपने भवसागर में भटकते हुए प्राणियों को मुक्ति का मार्ग बताना है, इसमें सन्देह नहीं कि आप तीर्थ का प्रवर्तन करेंगे, आपके विचार और आचार वैराग्य रस से ओत प्रोत हैं, फिर भी हे भगवन् ! यह हमारी व्यग्रता और उतावला पन है, हमारी इतनी ही प्रार्थना है, नाथ ! आप अब धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करो। भगवन् ! आप के द्वारा स्थापित धर्म तीर्थ सुखकारी और मोक्ष को देने वाला होगा, इस लिये आपकी निरन्तर जय हो। इस प्रकार कह कर लोकान्तिक देवता अपने अपने स्थानों को चले गये।

वर्षीदान और दीक्षा महोत्सव

भगवान् तो पहिले ही वैराग्य रंग में रंगे हुए थे, लोकान्तिक देवताओं की प्रार्थना पर भगवान् ने अवधिज्ञान का उपयोग कर अपनी दीक्षा का समय जान लिया, और उन्होंने वर्षीदान देना प्रारंभ किया।

अब तो प्रभु प्रातः सूर्योदय से लेकर भोजन समय तक याचकों को इनकी मुँह मांगी चीजे देने लगे। सारी नगरी में जगह जगह यह घोषणा करा दी गई कि जिसको जिन चीजों की



सम्भवनाथ भगवान दीक्षा लेने के पूर्व वर्षीदान देरहे हैं।

आवश्यक्ता हो वह ले जाये। वर्षीदान देते समय कोई ऐसी वस्तु न थी जो प्रभु को अदेय हो,,इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने जृंभक देवों को भेज कर दान करने योग्य धन पूरा किया, वे देवता ऐसे व्यक्तियों की धन सम्पत्तियो को 'जिन का कोई उत्तराधिकारी न था, जिसने मर्यादा से अधिक एकत्रित किया हुआ था, तथा जिन्होंने पहाडो, श्मशानो और घर की हवेलियो के अन्दर गुप्त रखा हुआ था, और जिनका बहुत समय पूर्व खोया और नष्ट हो चुका था, ऐसे सुवर्ण आदि द्रव्यों को, सब जगह से लाकर श्रावस्ती नगरी के चौक मे, त्रिक मे, बडे बडे मार्गों और नगरी के दरवाजों और राजमार्ग व महल मे शिखर की तरह ढेर लगाने लगे, उस धन से प्रभु ने सब की इच्छाओ को इस प्रकार तृप्त किया जिस प्रकार कल्पवृक्ष मन वाञ्छित फल देते हैं, भगवान् की कृपा से कोई निर्धन न रहा।

इस प्रकार प्रतिदिन सूर्योदय से लेकर सवा पहर तक अर्थात् लगभग पौने चार घण्टे मे याचकों को उनकी प्रार्थनानुसार दान देते हुए एक करोड आठलाख सुवर्ण मुद्रायें प्रतिदिन दान देते थे, इस तरह भगवान ने एक वर्ष मे तीन सौ अठासी करोड अस्सी लाख सुवर्ण मुद्राओं का दान किया।

दान देते हुए एक वर्ष पूर्ण हुआ तो तत्काल इन्द्र का आसन चलायमान हुआ, इन्द्र ने अवधिज्ञान द्वारा भगवान का दीक्षा समय मालूम किया, और तुरन्त ही अपने अन्त पुर के परिवार सहित श्रावस्ती नगरी में आया. सब से पूर्व प्रभु के घरको प्रदक्षिणा की और फिर भूमि से चार अगुल ऊचा रह विमान पर से उतरा विनयी इन्द्र ने प्रभु को भक्ति से प्रदक्षिणा देकर सादर

करने की लालसा से जन समूह विद्यमान था। कई तो प्रभु के दर्शनों के लिये उसी मार्ग के वृक्षों पर चढ़ कर तथा ऊँची ऊँची डालियों पर बैठकर चातक की तरह भगवान के दर्शनों के लिये ही टकटकी बांधे बैठे थे, मातायें अपने बच्चों सहित घरों से निकल कर भगवान के दर्शनों के लिये दौड़ पड़ीं :

भगवान देवताओं के चामरों से वेष्टित, तथा छत्र धारण किये हुए एवं जैसे अमृत की वृष्टि ही हो रही है, वैसी दृष्टि से जगत को आनन्द देते हुए जब प्रभु नगरी के मध्यभाग से स्थान स्थान पर लोगों द्वारा किये गये स्वागत और मंगलाचार को ग्रहण करते हुए रवाना हुए, उस समय लोग नेत्रों को प्रफुल्लित कर अंगुलिया से प्रभुकी ओर संकेत करके एक दूसरे को दिखाने लगे, इस प्रकार देव समूह और मानव मेदनी की जयध्वनि और मंगल आशीष को गहण करते हुए प्रभु श्रावस्ती नगरी के मध्य भाग से होकर सहसाम्रवन में पहुंचे।

वहां हार की तरह दीक्षा को ग्रहण करने की इच्छा वाले प्रभु शिबिका रत्न से ऐसे उतरे जैसे वृक्ष से मोर उतरता है। और तुरन्त ही सर्व अलङ्कार और आभूषणों का ऐसे त्याग किया जैसे यह माया जाल ही हो, और इस प्रकार सब आभरण छोड़ कर वे निष्परिग्रही होगये।

तदनन्तर इन्द्र ने चन्द्र के किरणों की तरह उज्ज्वल, सफेद, कोमल और स्निग्ध वस्त्र प्रभु के स्कंध पर रक्खा, क्योंकि यह परंपरा गत स्थिति है।

तत्पश्चात् मगशिर मास की पूर्णिमा को, दिन के पिछले भाग में, जब कि चन्द्रमा मृगशिर नक्षत्र में आया हुआ था, उस पवित्र

समय मे अपने मस्तक के केशो को शायद यह पूर्व उपार्जित क्लेश ही हो, इस प्रकार लीला मात्र मे पच मुष्टि मे लोच किया। तत्काल ही इन्द्र ने उन केशो को प्रसाद की तरह अपने वस्त्र के एक छेडे मे ले लिया और उनको लेकर क्षीर समुद्र में डाल आया, क्षीर समुद्र से शीघ्र वापस आकर इन्द्रने सुर, असुर और मनुष्यो मे होनेवाली जयध्वनि और कोलाहल को मुष्टि सज्ञा से निवृत्त किया। साक्षात् धर्म की तरह सभव प्रभु ने छट्ठतप करके, और सिद्ध को नमस्कार कर सब नरनारी के समक्ष 'मैं सर्व सावध योग का प्रत्याख्यान करता हूँ, ऐसा कह मोक्ष मार्ग के रथ के समान चारित्र को अगीकार किया। शरद ऋतु की धूप मे तप्त हुए मनुष्यो को जैसे बादलो की छाया मे सुख होता है, उसी तरह भगवत की दीक्षा मे एकान्त दु खमे मग्न नारकी जीवो को भी क्षणभर के लिये सुख हुआ।

मन. पर्यव ज्ञान और इन्द्र की स्तुति

जैसे दीक्षा की ही प्रतीक्षा कर रहा हो ऐसा मर्त्यक्षेत्र के मनो द्रव्य को प्रकाशित करने वाला मन पर्यव ज्ञान तत्काल ही प्रभु को उत्पन्न हुआ। तिर्थंकरो को दीक्षा के समय यह ज्ञान अवश्य होता है, उस समय दीक्षा को ग्रहण करते हुए त्रिलोक-पति के साथ दूसरे एक हजार राजाओ ने भी अपने पुत्र, मित्र स्वजन, सम्बन्धियों और राज्य को तृण की तरह छोड कर दीक्षा मे दीक्षा ग्रहण की।

इसके बाद इन्द्र ने त्रिलोकपति प्रभु को नमस्कार किया,

मुक्ति के बन्द हुए द्वार को खोलने में कूंची के समान आपकी कल्याणकारी देशना पुण्यवंत प्राणियों को ही सुनने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

हे नाथ ! चक्रवर्तियों के चक्र से, वासुदेव के चक्रसे, ईशानेन्द्र के त्रिशूल से और मेरे वज्र से तथा अन्य इन्द्रों के अस्त्रों में भी जो कर्म किसी दिन नष्ट नहीं होते, वह कर्म आपके दर्शन मात्र से नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। हे प्रभु ! क्षीर समुद्र के तट से, चन्द्रादिक की कान्ति से, मेघकी धाराओं से, गोशीर्ष चन्दन के लेपन से, और कदली के बनाये हुए घने घने उद्यानो से जिन दुःखों का परिताप नष्ट नहीं होता, वह परिताप आपके दर्शन मात्र से तत्काल ही शांत हो जाता है। अनेक प्रकारकी ओषधियों से, तरह तरह के चूर्णों से, कई प्रकार के लेपों से और भिन्न २ प्रकार के शास्त्रोपचार से एवं बहुत तरह के मंत्र प्रयोगो से जो रोग नष्ट नहीं होते वह रोग आपके दर्शन मात्र से प्रलय को प्राप्त करते है-, भगवन् ! अधिक क्या कहूं वास्तव में जो कुछ भी इस जगत में साध्य है, वह, आपके दर्शन मात्र से साध्य हो जाता है। इसलिये हे नाथ ! मैं तो केवल इतना ही चाहता हूं कि मेरा मन सर्वदा आप में ही लीन और व्याप्त चित्रित और सम्बन्धित रहे। मेरे नेत्र आपको ही देखते रहें, मेरे कान आपकी ही अमृत वाणी को सुनते रहे, और मैं आपकी ही सेवा में संलग्न रहूं। जगत्पति ! आपके चरणों के मुझे वार वार दर्शन हुआ करें, बस यही मेरी मनो कामना है, इस प्रकार प्रभु की स्तुति करके शक्रेन्द्र तथा अच्युतेन्द्र आदि इन्द्र प्रभु के सानिध्य को स्मरण करते करते अपने अपने स्थानो मे चले गये।

पारणा और विहार

दूसरे दिन उसी नगरी मे छट्टतप का पारणा करने की इच्छा से प्रभु राजा सुरेन्द्रदत्त के घर गये, प्रभु को आता हुआ देख कर राजा खडा हो गया और भक्ति से नमस्कार कर तथा उत्तम दूधपाक—खीर लेकर प्रभु से इस प्रकार कहने लगा—'भगवन ! यह प्रासुक आहार ग्रहण कर कृतार्थ करो', जगत में अद्वितीय पात्र रूप ऐसे प्रभु ने उस पायसान्न को—एषणीय, कल्पनीय और प्रासुक जानकर अपने हस्तरूपी पात्र में ग्रहण कर लिया और स्वाद मे अलुब्ध मनवाले प्रभु ने उस पायसान्न मे दातार का कल्याण करने वाला पारणा किया।

उस समय दिग्गज की गर्जना की तरह दुदुभि का नाद हुआ, शायद मोतियो की माला टूट गई हो, ऐसा भ्रम पैदा करते हुए आकाश मे दिव्य मोतियो और तरह तरह के रत्नो की वर्षा हुई। जहा पर प्रभु का पदार्पण हो वह वसुधातल पुण्य-पवित्र माना जाता है, इसलिये देवताओं ने नन्दनवन के मानो सर्वस्व हो ऐसे अनेक रंगों से विभूषित पुष्पो की वृष्टि की। दिग्गजो के मद की तरह सुगन्धित जल की वर्षा हुई। और देवताओ ने अनेक अमूल्य उज्जवल वस्त्रो को आकाश मे वहा पर इस तरह फेंका, जिससे आकाश भी चित्र विचित्र प्रतीत होने लगा, तथा उस समय अहोदान! महादान!! सुदान!!! इस प्रकार आकाश वाणी हुई इस प्रकार भगवान ने तो खीर से पारणा किया, और मनुष्य तथा देवताओ ने भगवान के दर्शनो से पारणा किया। आकाश से सुगन्धित पुष्पों और सुगन्धित जल की वृष्टि के साथ

और हाथ जोड़ भक्ति से पूरित वाणी द्वारा इन्द्र ने इस प्रकार भगवान् की स्तुति प्रारम्भ की—

चार प्रकार के ज्ञान को धारण करने वाले तथा चतुर्विध धर्म को बतलाने वाले एवं चार प्रकार की गति के प्राणियों को प्रीति देने वाले प्रभु ! आपकी निरन्तर जय हो। हे प्रभु ! आकाश को आधार देने की बुद्धि से ऊँचे पैर करके रहने वाले वरह पक्षी की तरह मैं अनन्त गुणवाले आपकी स्तुति करने को जो प्रवृत्त हुआ हूं, यद्यपि यह हास्यास्पद तो है ही, तथापि मैं आपके पुण्य प्रताप और अनुपम प्रभाव से ही आप की स्तुति करने मे समर्थ हुआ हूं, क्योंकि चन्द्रकान्त मणि चन्द्र के प्रभाव से ही झरती है।

हे देव ! स्वयंभूरमण समुद्र की लहरों को जैसे गिनना असम्भव है, उसी तरह अतिशयों के पात्र आप के गुणों का गिन सकना मेरे जैसो के लिये असम्भव है

हे त्रिजगत्पति तीर्थङ्कर ! यह भरतक्षेत्र की भूमि धन्य है, जिसमें जङ्गमतीर्थ रूप आप प्रभु विहार करेंगे। हे नाथ ! जैसे पकंज-कमल कीचड़ में से उत्पन्न होता है, तथापि वह कीचड़ में लिप्त नही होता, वैसे ही आप इस संसार में निवास करते हैं, परन्तु इसमें लिप्त नही होते। हे देव ! कर्मरूपी पत्र को छेदने में खड्ग धारा के समान समर्थ यह आपका महाव्रत जय पारहा है।

हे प्रभु ! भव्य प्राणियो के दर्शनमात्र से अथवा ध्यान मात्र करने से आप उनके कर्मरूपी पाश को छेदने के लिये अपूर्व शस्त्र रूप होते हैं, हे विभो ! जैसे वन में वृक्षों को उन्मूलन करने में उन्मत्त गजेन्द्र समर्थ होता है, वैसे ही संसार चक्र में फसाये रखने वाले कर्मों को छेदने में आपही समर्थ है।

हे त्रिलोकवंद्यदेव ! आप ममता रहित होने पर भी कृपालु हैं, निर्ग्रन्थ होने पर भी महान् ऋद्धियो मे युक्त हैं तेजस्वी होने पर भी सौम्य हैं, धीर और वीर होने पर भी समार और पापसे भयभीत हैं, मनुष्य होने पर भी आप देवताओं के लिये अत्यन्त पूजनीय हैं। धन्य हैं प्रभु ! आपके यह अनुपम गुण आश्चर्य युक्त करने वाले हैं।

देवाधिदेव ! परिपहो की सेना का नाश करते और उपसर्गों को निवारण करते हुए भी आप समता को पाये हुए हैं अहा ! आपकी यह कैसी दुर्लभ महिमा है ? आप वैरागी होने पर भी मुक्ति को भोगने वाले हैं, आप अद्वेषी होने पर भी कर्मरूपी शत्रुओं को हनन करने वाले हैं, सर्वदा जिगिषा रहित होने पर भी आपने त्रिजगत को जीत लिया है आपने किसी को कुछ दिया नहीं और नहीं किसी से कुछ लिया है तो भी आपका प्रभुत्व सब स्वीकार करते हैं।

प्रभु ! जो सुकृत दूसरों ने देह त्याग कर भी प्राप्त नहीं किया उस सुकृत के सम्पादन मे आप सर्वथा उदासीन है, तो भी वह आपके चरणों में आलोट रहे हैं। आप रागादिक में क्रूर और सर्व प्राणियों पर कृपालु होने के कारण भयङ्कर और दयालु परस्पर विरुद्ध गुण भी आपकी महिमा मे वृद्धि करने वाले हैं क्योंकि दूसरों में जो दोष हैं वही आप में गुण रूप विद्यमान हैं।

धर्म रूपी मण्डप के स्तम्भरूप, जगत को उद्योत करने में सूर्य के समान दयारूपी बेल को आश्रय देने के लिये बडे वृक्ष के समान हे देव ! संसार सागर मे भटकते हुए हम प्राणियों की भी रक्षा करो।

मनुष्य के नेत्रों से आनन्दाश्रुओं की वृष्टि हुई । जिस स्थान पर भगवान ने पारणा किया, उस स्थान पर सुरेन्द्रदत्त ने एक सुवर्ण मणिमय पीठ बनवाई और प्रभु के चरणों की तरह उस पीठ की त्रिकाल पूजा करने लगा, इस प्रकार सुरेन्द्रदत्त पूजा किये बिना भोजन भी कभी न करता था ।

भगवान संभवनाथ प्रभु वहां से विहार कर अनेक ग्राम, नगर आदि में विहार करते रहे, तथा भयङ्कर जंगलों, दुर्गम पहाड़ों गुफाओ और निर्जनस्थानों पर एकाग्र दृष्टि से, मेरु की तरह निष्कंप, सिंह की तरह भय रहित विचरते, हुए भगवान ने चौदह वर्ष व्यतीत किये । विहार करते हुए प्रभु नये नये अभिग्रह करते थे, बाईस परिसहों को उद्वेग रहित सहन करते, मनोगुप्ति, वचन-गुप्ति और काय गुप्ति को धारण करते, तथा पांच समितियों को स्वीकार करते हुए निर्भयता से स्थिर रहते थे ।

इस तरह शंख के समान निर्लेप, चन्द्रमा की तरह शीतल, सूर्य की तरह तेजस्वी, समुद्र की तरह गम्भीर, तथा संसार की स्थिति से वर्जित, परिषहों से अजेय, एकाकी, निर्मलनिर्मम, मौनी, निर्ग्रन्थ, ध्यानस्थ और जंगल में रहने वाले सिंह वाघादि क्रूर जानवरों तथा नगर में रहने वाले भक्त सुश्रावकों पर सम दृष्टि रखने वाले प्रभु छद्मस्थ अवस्था में इस महीतल पर विचरते हुए अनुक्रम से सहस्राम्रवन में आये ।

केवलज्ञान

पवन की तरह अप्रतिबद्ध—स्वतन्त्र विहार करने वाले प्रभु-सहस्राम्रवन में साल वृक्ष के नीचे स्थित हो, इन्द्रियों तथा चित्त

को रोक कर ध्यान में विशेप प्रवृत हुए और उन को अप्रमत्त गुणस्थान प्राप्त हुआ, और अपूर्वकरण में आरूढ होते हुए क्षपक श्रेणी में चढ कर भगवान सप्रविचार पृथक्त्व वितर्क नामक शुक्ल ध्यान को प्रथम सीढी पर आरुढ हुए, वहा से अनिवृत्ति वादर और सूक्ष्म सपराय नामक नवमे दशमे गुणस्थान पर आरूढ हुए, और तदनन्तर क्षीणमोह गुणस्थान प्राप्त हुआ, अर्थात् एकत्व वितर्क अप्रविचार नामक शुक्ल ध्यान के दूसरे पाद पर रहते हुए प्रभु ने कायोत्सर्ग किया। इस प्रकार ध्यान में रहते हुए प्रभु के पाच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, तथा पाच अतराय इस प्रकार सम्पूर्ण घातिकर्म नष्ट होगये, और इसके परिणाम स्वरूप कार्तिक मास के कृष्णपक्ष की पचमी के दिन जब चन्द्रमा मृगशिर नक्षत्र में आया हुआ था छट्ठतप युक्त प्रभु को भूत, भविष्यत और वर्तमान काल की सर्व वस्तुओं को हस्तामलकवत् ज्ञान कराने वाला उज्ज्वल केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ।

उस समय सुखकारी वायु चलने लगी दिशायें प्रसन्न और स्वच्छ होगई नरक में भी परमाधार्मिकों द्वारा, क्षेत्र से उत्पन्न हुआ और परस्पर एक दूसरे से उत्पन्न होने वाला दु:ख तत्काल नाश होने से क्षणभर के लिये नारकी जीवों को दुर्लभ सुख हुआ, सुर, असुर और इन्द्रों के आसन चलायमान होगये, आसनों के कम्पित होने से प्रभु का केवलज्ञान जाना और केवलज्ञान की महिमा करने के लिये वहा आये।

समवसरणरचना

इन्द्रादिक देवताओं ने आकर वहा केवल ज्ञान महोत्सव

किया, और भगवान की अमृत मयी धर्म देशना सुनने के लिये उन्होंने समवशरण की रचना की। सब से पूर्व वायुकुमार देवता ने एक योजन पृथ्वी साफ़ की, और मेघकुमार देवता ने सुगन्धित-जल बरसाकर छिड़काव किया। व्यंतर देवताओं ने स्वर्ण, मणिका और रत्नों से फर्श बना दिया। उत्तमोत्तम, सुगन्धित पंचरंगी फूल वहां पर बिछा दिये, और चारों ओर श्वेत छत्र, ध्वजा, स्तम्भ मधुर मुखादि चिह्नों से सुशोभित रत्न, मणिका और मोतियों के तोरण बांध दिये। वहां पर बनाई गई रत्नादिक की पुतलियों का जब एक दूसरे पर प्रतिबिम्ब पड़ता तो वे ऐसी प्रतीत होती, जैसे वे एक दूसरे को आलिंगन कर रही हों। स्निग्ध नील मणियों के बनाये हुए मगर के चित्र यह भ्रान्ति उत्पन्न करते थे जैसे वे विनाश को प्राप्त हुए कामदेव से छोड़े गये निज चिह्न रूप मगर हों। वहां पर श्वेतछत्र ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो भगवान के केवल ज्ञान से प्रसन्न हो कर दिशायें मधुर हास्य कर रही हों। फड़कती हुई ध्वजायें ऐसी जान पड़ती थी मानो पृथ्वी ने नृत्य करने के लिये अपने हाथ ऊंचे किये हो, तोरणों के नीचे बनाये गये स्वस्तिक आदि अष्टमंगल बलि-पट के समान प्रतीत होते थे। समवसरण के ऊपर के भाग को अर्थात् सब से पहिले कोटगढ़ को वैमानिक देवताओं ने रत्नों का बनाया, यह ऐसा जान पड़ता था जैसे रत्नगिरिकी रत्नमय मेखला ही वहां लाई गई हो। उस गढ़ पर भांति भांति की मणियों के कंगूरे बनाये गये, जो ऐसे प्रतीत होते थे, मानो वे आकाश को अपनी किरणों से विचित्र प्रकार का वस्त्रधारी बना देना चाहते हैं। उसके बाद प्रथम कोट को घेरे हुए ज्योतिष्कपति देवताओं ने

दूसरा कोट स्वर्ण का बनाया, उसका स्वर्ण ऐसे-प्रतीत होता था मानो यह ज्योतिष्क देवों की ज्योति का समूह हो उस कोट पर बनाये गये रत्नमय कगूरे-ऐसे जान पड़ते थे मानो सुरो असुरों की स्त्रियों के लिये मुख देखने को रत्नमय दर्पण रखे गये हों। इसके बाद भुवनपति देवताओ ने पहिले दो कोटो को घेरे हुए चांदी का तीसरा कोट बनाया, उसपर बनाये गये स्वर्ण के कगूरे ऐसे प्रतीत होते थे मानों देवताओं की वावड़ियों के जल में स्वर्ण के कमल खिले हुए हो। इस प्रकार विमानवासी, ज्योतिष्क और भुवनपति देवताओ द्वारा निर्माण किये गये कोटों के चार चार दर्वाजे थे, प्रत्येक द्वार पर देवताओं ने धूपदानिया रखीं, उनसे इन्द्रमणि के स्तभ जैसी धूम्रलता-उठ रही थी। समवसरण के प्रत्येक द्वार पर चार चार रास्तो वाली वावड़िया बनाई गयी जिन मे स्वर्ण के कमल भी विद्यमान थे। दूसरे कोट के ईशान कोण में प्रभु के विश्रामार्थ एक देव छद—विश्रामस्थान बनाया गया। अन्दर के प्रथमकोट के पूर्व द्वार-पर दोनों ओर स्वर्ण के समान वर्ण वाले दो वैमानिक देवता द्वारपाल बनकर खड़े हुए। दक्षिण दिशा के द्वार में दो व्यन्तर देवता द्वारपाल के तौर पर खड़े हुए। पश्चिम द्वार पर रक्तवर्णी दो ज्योतिष्क देवता द्वारपाल होकर खड़े हुए वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो सध्या के समय सूर्य और चन्द्रमा आमने सामने आ खड़े हुए हो। उत्तार द्वार पर कृष्णकाय भुवनपति द्वार पाल बन कर खड़े हुए। दूसरे कोट-गढ़ के चारों दर्वाजो पर क्रमश अभय, पास, अकुश और मुद्‌ग को धारण करने वाली 'श्वेतमणि, शोणमणि, स्वर्णमणि और नील मणि के समान कान्तिवाली पहिले ही की तरह चार

निकाय की जया, विजया, अजिता और अपराजिता नाम की दो दो देवीयां प्रतिहारी बनकर खड़ी हुई। और अन्तिम-बाहर के कोट-गढ़ के दर्वाजों पर तुंबरु, खटवांग धारी, मनुष्य मुण्डमाली, और जटा मुकुट मंडित नामक चार देवता द्वारपाल बनकर खड़े हुए।

समवसरण के मध्यभाग में व्यन्तर देवताओं ने दो कोस और आठ सौ धनुप ऊंचा एक चैत्यवृक्ष बनाया, उस वृक्ष के नीचे विविध रत्नों की एक पीठ रची गई, उस पीठ पर एक अप्रतिम मणिमय छंदक बनाया गया छंदक के मध्य में पूर्व दिशा की ओर पादपीठ सहित रत्न सिंहासन का निर्माण किया गया, और उस पर तीन लोक के आधिपत्य के चिह्न स्वरूप तीन छत्र बनाये गये। सिंहासन के दोनों ओर दो यक्ष हाथों में दो चन्द्र के समान उज्ज्वल चंवर लिये हुए इस प्रकार प्रतीत होते थे मानो भक्ति उन के हृदय में न समाकर बाहर निकल पड़ी हो। समवसरण के चारों द्वारों पर अद्भुत कांति के समूह वाला एक एक प्रकाशमान धर्म चक्र स्वर्ण के कलश में रखा गया। मानो वह प्रभु के धर्म चक्री होने की सूचना दे रहे हैं।

प्रातःकाल के समय वैमानिक, भुवनपति, व्यंतर और ज्योतिष्क इस तरह चार प्रकार के करोड़ों देवताओं से परिवेष्टित भगवान समवसरण में प्रवेश करने के लिये रवाना हुए, उस समय सहस्रपत्र वाले स्वर्ण के नौ कमल बनाकर देवताओं ने भगवान के आगे रखे, उन में से दो कमलों पर भगवान पदार्पण करते और प्रभु जैसे जैसे आगे बढ़ते, वैसे ही वैसे देवता पिछले कमल उठाकर आगे धरते जाते थे। भगवान पूर्व द्वार से

समवसरण मे प्रविष्ट हुए और चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा की, और फिर 'नमस्तीर्थाय, इस तरह तीर्थ को नमस्कार करके प्रभु मोह-रूपी अन्धकार को छेदने के लिये पूर्वाभिमुख सिंहासन पर इस तरह आरूढ हुए जैसे अन्धकार को नष्ट करने के लिये सूर्य पूर्वाचल पर आरूढ होता है। तदनन्तर व्यतर देवताओं ने अव-शिष्ट तीन दिशाओं में भगवान के रत्न के तीन प्रतिबिम्ब वनाये यद्यपि देवता प्रभु के अगुठे सा रूप वनाने की भी शक्ति नहीं रखते तथापि वे प्रतिविम्ब प्रभु के प्रभाव से ही वनगये। प्रभु के मस्तक के चारों ओर फिरता हुआ शरीर की कान्ति का मण्डल-भामण्डल प्रकट हुआ, जिसका प्रकाश इतना प्रबल था, कि उसके सामने सूर्य का प्रकाश भी जुगनु जैसा प्रतीत होने लगा। प्रभुके समीप रत्नमय एक ध्वजा थी मानो वह आप एक हाथ ऊंचा करके यह कहती हुई शोभा देरही है कि यह एक ही प्रभु है धर्म की मूर्ति हैं।

विमानपति देवताओं की स्त्रिया समवसरण में पूर्व द्वार से प्रविष्ट हुई और तीन प्रदक्षिणा देने के बाद तीर्थङ्कर तथा तीर्थ को नमस्कार कर प्रथम कोट में, साधु साध्वियों के लिये स्थान छोड़कर उनके स्थान के मध्य अग्निकोण मे खड़ी हुई। भुवनपति, व्यतर और ज्योतिष्क देवों की स्त्रिया दक्षिण दिशा के द्वार से प्रविष्ट होकर पहले की तरह प्रदक्षिणा नमस्कार आदि करके नैऋ-त्यकोण में खड़ी हुई। भुवनपति, ज्योतिष्क और व्यतर देवता पश्चिम द्वार से प्रविष्ट होकर वायव्यकोण में बैठे। वैमानिक देवता मनुष्य और मनुष्य स्त्रिया उत्तर दिशा से प्रविष्ट होकर ईशान कोण में बैठे। और इन सबने भी बैठने से पहिले विमान पति

देवताओं की स्त्रियों की तरह प्रदक्षिणा दी, तीर्थङ्कर और तीर्थ को नमस्कार कर अपना स्थान ग्रहण किया। भगवान के समवसरण में पहिले आये हुए महान ऋद्धि वाले हों या अल्प ऋद्धि वाले, उन सबको पीछे आने वाला नमस्कार करता था, और पहिले आये हुओं को नमस्कार करने के अनन्तर ही बैठते थे, प्रभु के समवसरण में किसी को आने की मनाई न थी, वहां पर परस्पर विरोधियों का भी वैरभाव छूट गया, कोई किसी से भय-भीत न था और समवसरण में किसी प्रकार की विकथा न होती। समवसरण के दूसरे कोट गढ़ में तिर्यंच आकर बैठे और तीसरे कोट गढ़ में सब के वाहन खड़े हुए। इस प्रकार समवसरण की रचना होने के पश्चात् शक्र इन्द्र ने भगवान को नमस्कार किया, और हाथ जोड़कर भक्ति पूर्ण वाणी से इस प्रकार स्तुति प्रारम्भ की।

शक्रेन्द्र द्वारा स्तुति

हे प्रभु ! आप बुलाये बिना ही सबकी सहायता करने वाले हैं निष्कारण वात्सल्यवान हैं, प्रार्थना किये बिना भी उपकारी हैं। हे नाथ ! कोई सम्बन्ध न होने पर भी आप बन्धु है, अभ्यंग किये बिना स्निग्ध हृदय वाले, मलापकर्षण बिना उज्ज्वल वचन को बोलने वाले, प्रक्षालन किये बिना निर्मल शील वाले शरण देव ! मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूं।

हे स्वामी ! आप शांत होने पर भी वीर व्रती हैं, क्षमाशील और सब पर समान दृष्टि वाले होने पर भी आपने कर्मरूपी कुटिल कांटों को अत्यन्त नष्ट कर दिया है। हे प्रभु आपकी यह अलौ-

किक महिमा है कि आप वीतराग हैं तो भी आपके हाथ पैर राग-युक्त (लाल) हैं। आपने कुटिलता को छोड़ दिया है तो भी आपके केशकुटिल हैं। आप तीन लोक के रक्षक हैं तो भी आपके पास कोई दण्ड नहीं। आप निसग और ससार से विरक्त हैं तो भी आप त्रिलोकनाथ कहलाते हैं। आपने अलङ्कार मात्र का त्याग कर दिया है तो भी आपको तीन रत्न (ज्ञान-दर्शन चरित्र) प्रिय हैं। आप सब के अनुकुल और सब पर दया करने वाले हैं तो भी आप मिथ्यात्व से द्वेप करते हैं। आप स्वभाव से ही सरल है तो भी पूर्व आप छद्मस्थावस्था में रहे थे। आप दयालु हैं तो भी आपने कामदेव का निग्रह किया है। आप निर्भय हैं तो भी ससार से भयभीत हैं। आप उपेक्षा मे तत्पर हैं तो भी विश्व के उपकारक हैं। आप अदीप्त हैं तो भी भामण्डल से दीप्त हो रहे हैं। आप शान्त स्वभावी हैं तो भी चिर-काल से तप में लीन हैं। आप रोप रहित हैं तो भी कर्मों पर आप रोप रखते हैं। आप अभव * हैं तो भी महेश कहलाते हैं। आप अगद † हैं तो भी नरक को छेदने वाले हैं। आप अरा-जस ‡ हैं तो भी ब्रह्मस्वरूप हैं, इस प्रकार आप का आश्चर्योत्पा-दक चरित्र कोई जानने को समर्थ नहीं।

---

* अभव अर्थात् शङ्कर नहीं, अथवा जिसका कोई भव बाकी नहीं रहा।

† अगद—गदा नामक आयुधको न धारण करने वाले अथवा गद नामक रोग से रहित।

‡ अराजस—रजोभाव विषयाभिलाषा जिनको नहीं है।

हे स्वामिन् ! दीर्घकाल से साथ रहने वाले विषयों से आप विरक्त हैं और अदृष्ट योग में सर्वथा लीन हैं। आप तो अपकार करने वाले पर राग धरते हैं, और दूसरे तो उपकार करने वाले पर भी राग नहीं धरते, अहो ! आप की सब बातें ही अलौकिक हैं। प्रभु ! आप ने हिंसक पुरुषों पर उपकार किया और आश्रितों की उपेक्षा की, आपके इस विचित्र चरित्र का कौन अनुसरण कर सकता है। भगवन् ! आपने अपनी आत्मा को परम समाधि में ऐसा लीन कर लिया है, 'मैं सुखी हूं या दुःखी हूं, ऐसा आपके मनमें भी विचार नही आता प्रभु ! आप तो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त आनन्द मय हैं।

हे विश्वपति ! यह अशोक वृक्ष, भ्रमरो के गुञ्जारव से मानो गा रहा हो, चलायमान पत्रों से मानों नाच रहा हो और आपके गुणों में रक्त होने से रक्त होगया हो, इस प्रकार प्रसन्न प्रतीत होता है। यह देवता आपकी योजन प्रमाण देशनाभूमि पर जानु प्रमाण ऐसे पुष्पों की वृष्टि करते हैं जिनकी डंडिया नीचे को रहतीं हैं। आपकी मालव कौशिकी आदि ग्राम तथा राग से पवित्र दिव्यध्वनि होती है तब मृग भी हर्ष से ऊंची ग्रीवा करके सुनते हैं। आपके आगे रही हुई चन्द्र के समान उज्ज्वल चामर श्रेणी ऐसी प्रतीत होती है मानो आपके मुख कमल की सेवा के लिये हंसों को पंक्ति आई हो। सिंहासन पर विराजमान होकर जब आप देशना देते हैं तब मृग सिंह की सेवा करनेही मानो आये हो ऐसे वे देशना सुनने आते हैं। ज्योत्स्ना से व्याप्त चन्द्रमा जैसे चकोर पक्षी को हर्ष देता है वैसे ही भामण्डल की कांति से व्याप्त आप प्रभु सबके नेत्रों को आनन्द देते हैं। हे देव ! आपके

समक्ष आकाश में ध्वनि करती हुई दुदुभी सम्पूर्ण जगत में आपके साम्राज्य को बतलाती हुई प्रतीत होती है। पुण्य समृद्धि के क्रम की तरह एव तीन भुवनों पर आपका प्रभुत्व बताने वाले यह तीन छत्र आप पर शोभा दे रहे हैं। हे नाथ! इस प्रकार आपकी चमत्कार पूर्ण प्रातिहार्य लक्ष्मी को देखकर क्या मिथ्या दृष्टि को भी आश्चर्य न होगा? हे सर्वज्ञ देव! मुक्ति द्वार को प्रकाश करने वाली आपकी देशना से हमारा जीवन सफल होगा।

हे जगदीश! मैं तो अब आप का ही अनन्य किंकर हु, जिस प्रकार आपका दासत्व स्वीकार करने से मैं शोभित होरहा हू वैसा स्वर्ग के राज्य से भी शोभित नहीं होता, क्योंकि मुकुट में जडा गया रत्न जैसी शोभा पाता है वैसे वह पहाड पर पडा हुआ शोभा नहीं देता।

हे सर्वज्ञ देव! आपकी अमृत समान देशना सर्व प्राणियों के कल्याण करने में चिन्तामणि रत्न से भी बढकर है। पैंतीस अतिशयों से युक्त आपकी वाणी मोक्ष मार्ग का प्रकाश करने वाली है, हे देव! आपकी देशनारूपी अमृत वर्षा से हमारा जीवन सफल और कृतार्थ होगा।

भगवान की देशना

इस प्रकार इन्द्र द्वारा स्तुति होने के अनन्तर भगवान श्री सम्भवनाथ प्रभु ने सर्व भाषाओं में परिणत होने वाली तथा पैंतीस अतिशयों से युक्त देशना को विश्व के उपकार की इच्छा से प्रारम्भ किया।

भगवान् की देशना

हे भव्य प्राणियों ! इस असार संसार में सभी वस्तुयें पानी के बुद्बुदों के समान क्षणिक और अनित्य है, सुन्दर यौवन, चंचला लक्ष्मी, प्रिय स्वजन और सम्बन्धी, मनोहर मकान तथा अन्य विविध भोग सामग्री सभी नष्ट प्राय होने वाले हैं, प्राणी इनके प्रारम्भिक माधुर्य में सुख मान कर मोहित होजाता है, और अपने जीवन का अमूल्य समय इन्हीं में आशायें में बांध कर नष्ट कर डालता है। प्राणी समझता है, मैंने जो विचार किया है, वह अवश्य सम्पन्न होगा, बस इसी आशा की रस्सी के सहारे सांसारिक कार्यों में लगा रहता है, झूठ और कपट से पैसा इकट्ठा करता है, देश विदेश में जाकर प्रयत्न करता और द्रव्य सम्पत्ति लाता है, अपने पुत्र-परिवार पर अभिमान करता है, परन्तु वह यह भूल जाता है कि हम हर समय यमराज के मुंह में खड़े हैं, भले ही कितना बड़ा कुटुम्ब-परिवार हो, अपार धन सम्पत्ति हो, वज्र के समान देह हो, और रूप यौवन सम्पन्न हो, परन्तु काल की कृपा का वह भी शिकार होता है, यमराज के मुंह में पड़े हुए प्राणियों की रक्षा के लिये मन्त्र-जन्त्र और विविध प्रकार की चिकित्सा सब व्यर्थ जाते हैं, प्राणी जिस विषयादि में सुख मानकर लिप्त होजाता हैं, वास्तव में वह सुख नहीं प्रत्युत बकरे की तरह आपत्ति जनक और नष्टकारक है।

जैसे किसी ने अतिथि के सम्मान के लिये अपने घर बकरा पालना प्रारम्भ किया, उसे तरह तरह के उत्तम पदार्थ खिला खिला कर हृष्ट पुष्ट और मोटा किया। उसे बड़े प्यार से रोज

स्नान कराया जाता, लाल पीले तिलक लगाये जाते, और अच्छी तरह से लालन पालन किया जाता। वकरा इसी मे अनन्त सुख मान कर प्रसन्नता से वहा बन्धा रहता, परन्तु उसे मालूम नहीं कि यह मन उसके लिये शीघ्र मृत्यु के कारण हैं, उसे यह पता ही नहीं, कि शीघ्र ही किसी अतिथि के सत्कार में काटे जाने के लिये तैय्यार हुआ है, इस प्रकार अज्ञानी प्राणी तरह तरह के भोगविलास, आरम्भ, परिग्रह से सन्तुष्ट होजाता, और झूठ, चोरी, शठता और क्रूरता से काम भोग प्राप्त कर वकरे की तरह तृप्त होता है, परन्तु उसे यह ज्ञान नहीं होता, कि यह मन नरक के लिये तैय्यारी के साधन है, जैसे कुछ दिनो में अतिथि के आने पर वह हृष्ट पुष्ट वकरा काटा जाता, और चिल्लाता है, वैसे प्राणी भी कुछ दिनों में मृत्यु आने पर शोक और पश्चाताप करता है। इस लिये इस ससार मे कहीं सुख मान बैठना बड़ी मूर्खता है।

किसी प्राणी को कोई इच्छित वस्तु मिल जाती है, तो उस पर उसे प्रीति होती है, और राग मे जो सुख होता है, उसी को वह सुख मान लेता है, वास्तव में वह सुख कहा है ? यदि है भी तो अत्यन्त अल्प समय के लिये वह सुख साधन है, पौद्गलिक पदार्थ शीघ्र ही नष्ट होने वाले हैं, जैसे बादल आते हैं, और एक हवा के झोंके से नष्ट भ्रष्ट होजाते हैं, पानी में बुद बुदे निकलते हैं, और तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार पौद्गलिक पदार्थों में सुख मानना स्वप्न सुख की तरह भ्रम मात्र है। जैसे—

एक भिखारी सारा दिन शीत धूप सहने के बाद अन्न के टुकड़े माग कर लाया, और गाव मे बाहर एक स्थान पर शान्ति

से बैठ मांग कर लाये हुए अन्न के टुकड़े खाये और पानी पिया, भिखारी सारा दिन का थका हुआ तो था ही और मन्द २ पवन चल रहा था, अतः कुछ नींद आगई, स्वप्न में देखा, मुझे एक राज्य मिला है, मेरी अनेक सुन्दर स्त्रियां हैं, तरह तरह की भोग विलास-सामग्री प्राप्त हुई है, नौकर चाकर-दास दासियों की कमी नहीं, सुन्दर रत्न जटित सिंहासन है, दोनों ओर चंवर किये जा रहे हैं, अनेक भाट लोग स्तुति के गीत गारहे हैं, कवि लोग मनोरंजन कर रहे हैं, अनेक सैनिकों और मन्त्रियों से वेष्टित होकर नगर में भ्रमण के लिये निकला हूं, और न्यायालाय में अनेक सामन्त और राजा सम्मान कर रहे हैं, इस प्रकार अत्यंत आनन्द में जीवन व्यतीत कर रहा हूं, वस इतने में नींद भग्न हुई चारों ओर देखा, न कोई राज्य है, न है मन्त्री मण्डल न कवि हैं न सेना, न भव्यसिहासन है, और न ही भोग सामग्री, एक ओर फटी पुरानी गोदड़ी पड़ी है, और एक ओर भिक्षान्न का ठीकरा, वस संसार का सुख इसी स्वप्न के समान है वस्तुतः भिखारी के स्वप्न की तरह इस संसार में सुख मानना निस्सार है।

हे भव्यात्माओ ! इस असार संसार में प्राणियों को मनुष्य जन्म प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है, अपने पूर्व कृत कर्मो से प्रेरित प्राणी अनन्त काल तक नरक और तिर्यञ्च गति में भटकते और दुःख उठाते रहते हैं, कभी महान पुण्य का योग प्राप्त हो और शुभ कर्म उदय में आयें तो मनुष्य जन्म उपलब्ध होता है, मनुष्य जन्म प्राप्त होने पर भी सम्यक्त्व—सच्चे धर्म की प्राप्ति एवं उस पर अनन्य श्रद्धा तथा प्रमाद रहित आचरण और भी दुर्लभ हैं इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य जन्म बार बार नहीं मिलता,

ऐसा दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर भी जो मूर्ख अपना मनुष्य जीवन विषय भोग और सासारिक सुखो में व्यर्थ गवा देते हैं वह चिन्तामणि रत्न को मूर्खता पूर्ण विनोद तथा खेल मे खो बैठता है—जैसे—

विलासपुर नामक नगर में प्रमोददत्त और ब्रह्मदत्त नामक दो मित्र रहते थे, दोनों मे परस्पर बड़ा ही स्नेह था, परन्तु दुर्भाग्य से दोनों ही धन हीन दरिद्री थे, दोनों देशान्तर मे धन एकत्रित करने के लिये गये, अनेक तरह के प्रयत्न करने पर भी उन्हें कोई सफलता न मिली और वे अपना परिश्रम करते हुए हताश होगये, अन्त में दोनों ने देवताओं को आराधन करने का विचार किया और दोनो ही इस कार्य में सलग्न होगये, अनेक देवताओ का आराधन करते हुए उन्हें बहुत समय व्यतीत होगया, परन्तु उनका मनोरथ सिद्ध न हुआ। अब वे निरन्तर चिन्तित रहने लगे कि हम इतने समय के बाद अपने नगर और कुटुम्ब-परिवार में ऐसे दरिद्री ही किस मुह से जायें हमारा तो मर जाना ही श्रेष्ठ है।

एक दिन वे दोनों एक यक्ष के मन्दिर मे गये और वहा यह निश्चय कर के बैठ गये कि यहा से या तो कुछ प्राप्त करके जायेंगे अन्यथा यहीं अपने प्राण समर्पित कर देंगे, इस प्रकार भूखे प्यासे उन्हें देवता का आराधन करते हुए कुछ दिन व्यतीत होगये तब वहा का यक्ष सन्तुष्ट होकर प्रगट हुआ और कहा—हे साहसी पुरुषों! मागो, तुम क्या चाहते हो, मैं तुम्हारे साहस से अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं। इस पर दोनो ने कहा—देव! यदि आप हम पर प्रसन्न हुए हैं तो हमें प्रचुर धन सम्पत्ति प्रदान कीजिये। देवता ने

दोनों को एक एक चिन्तामणि रत्न देकर कहा—तुम इस से जो कुछ भी चाहोगे वह तुम्हें मिल जायेगा, यह रत्न तुम्हारे सर्व मनोरथ सिद्ध करेगा, यह कह यक्ष तो अन्तर्धान होगया, और दोनों वहां से अपने देश की ओर चल पड़े।

कई गांव और नगरों में घूमते हुए वे दोनों एक समुद्र तट पर आ पहुँचे, सायङ्काल का समय था इस लिये दोनों ने उसके निकट एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने का विचार किया। दोनों वृक्ष के नीचे जाकर बैठे।

वह हरा भरा और सुन्दर वृक्ष था अनेक पक्षी उस पर आश्रय ले रहे थे, पक्षियों में कौवा तो स्वभाव से दुष्ट होता है, किसी कौवे ने उन पर बीट करदी इस पर ब्रह्मदत्त को बड़ा क्रोध आया और इस क्रोध के आवेश में कौवे को उड़ाने के लिये उसने चिन्तामणि रत्न दे मारा, कौआ तो रत्न लगने से पहिले ही उड़ गया, परन्तु वह चिन्तामणि रत्न वृक्ष की ठोकर खा कर समुद्र में जा गिरा, इस से उसे अत्यन्त दुःख हुआ, इधर रात का समय होगया, चाँदनी रात थी ब्रह्मदत्त शोक में निमग्न था, और प्रमोददत्त बार २ अपने चिन्तामणि रत्न को देखता और खुशी से फूला न समाता, अहा! यह मेरा रत्न तो चन्द्र की तरह उज्ज्वल और निर्मल है, चन्द्र की तरह देदीप्यमान और शोभा पारहा है, इस प्रकार चन्द्र के साथ उसकी तुलना करता हुआ बार बार रत्न को उछालने लगा, इतने में हाथ का तेज झटका लगा और चिन्तामणि रत्न उछल कर समुद्र में जा पड़ा, इस प्रकार वे दोनों पहिले की तरह ही दरिद्री और दुःखी हो गये। समुद्र में गिरा हुआ रत्न फिर कहां प्राप्त हो सकता है? वे दोनों पश्चाताप ही करते रह गये। इसी

तरह जो प्राणी चिन्तामणि रत्न समान दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर भी धर्म का साधन नहीं करता वह ब्रह्मदत्त और प्रमोददत्त की तरह निर्भागी ही है।

जो पुरुष मोह, मद, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा के वश होकर चौरासी लाख जीवायोनियों में भटकता हुआ अत्यन्त कठिनता से मनुष्य जन्म पाता है, और उस जीवन मे धर्म साधन नहीं करता वह सोने के वर्तन में धूल और कचरा भरने की मूर्खता करता है, एव जिस अमृत की एक विन्दु के पानसे भी मनुष्य अजर अमर हो जाता है; उस अमृत को पैर धोने मे उपयोग करने की महा मूर्खता करता है। जो मूर्ख मनुष्य धर्म को छोडकर विषय भोग विलास की ओर दौडता है, वह अपने घर मे उत्पन्न हुए कल्पवृक्ष को उखाड कर बबूल का वृक्ष बोना चाहता है, रत्न के बदले काँच का टुकडा लेकर प्रसन्न होता है, दीर्घकाय हाथी को देकर बदले मे गर्दभ ग्रहण करता है, भला इससे बढकर और मूर्खता क्या होगी? इसलिये हे भव्य प्राणियों! इस ससार रूपी समुद्र में धर्म की नैया को छोड कर पाषाण के टुकडे पर पार उतारने का प्रयत्न न करो, इस दुर्लभ मनुष्य जन्म मे जितना भी हो सके धर्म साधन करो, थोडा सा धर्म साधन भी पापो को नष्ट करने वाला और सुख प्रदायक है, सच तो यह है छोटा सा दीपक भी अन्धकार का नाश कर डालता है, अमृत की एक बूंद ही अजर अमर कर देती है, अग्नि की एक चिनगारी ही घास के ढेर को जला डालती है, उसी तरह थोडा सा धर्म प्राप्त करना भी कर्मरूपी मल को धोने वाला है, इसलिये हे भव्यात्माओं! विना किसी प्रमाद के धर्म साधन में प्रवृत हो जाओ धर्म का साधन

करते हुए चाहे कितनी ही आपत्तियाँ आयें, धर्म के लिये अपने प्राण भी न्यौछावर करने पड़ें परन्तु सूर्ययशा की तरह धर्म से कदापि विचलित न हों—

अयोध्या नामक नगरी में श्री ऋषभदेव का पौत्र अपने पिता भरत के अनन्तर सूर्ययशा नामक राजा राज्य करता था, न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने के कारण सूर्यशा की कीर्ति चन्द्र की तरह उज्ज्वल चारों ओर फैल रही थी, तीन खण्ड का अधिपति होने के कारण सूर्ययशा सचमुच सूर्य की तरह प्रवल प्रतापी राजा था, उसकी बत्तीस हजार रानियाँ एवं जयश्री नामक मुख्य रानी थी, भोगविलास की सामग्री की उन्हें कोई कमी न थी, परन्तु राजा सूर्ययशा तो धर्म निष्ट था, वह सदा धर्म कार्य में भी संलग्न रहता, विशेषतया—अष्टमी और चतुर्दशी को पौषध प्रत्याख्यान आदि तप करता था, इस प्रकार वह अपने धर्म पालन में दृढ़ प्रतिज्ञ था।

एक दिन सौधर्म सभा में इन्द्र ने सूर्ययशा के धर्म पर निश्चल होने की प्रशंसा की—"इस समय मनुष्य लोक में सूर्ययशा नामक राजा अपने धर्म में अत्यन्त दृढ़ है, समुद्र मर्यादा छोड़ दें, सूर्य पूर्व में निकलने की अपेक्षा पश्चिम से निकल आयें, परन्तु वह धर्म से विचलित नहीं होता, देवता भी उसे चलायमान नहीं कर सकते, इन्द्र के मुख से इस प्रकार एक मनुष्य की स्तुति सुनकर उर्वशी नामक अप्सरा मन ही मन में हंसी, अहो! सात धातुओं के शरीर वाले और अन्न पर गुजारा करने वाले की यह सामर्थ्य? नहीं, कौन ऐसा है जो देवताओं से भी चलायमान न हो? मैं अभी ही जाकर उस की परीक्षा

करती हू, इस विचार मे रंभा को साथ लेकर उर्वशी अयोध्या नगरी के निकट श्री ऋषभदेवजी के मन्दिर में आई, और अपना मोहनीय सुन्दर रूप करके वहा पर वीणा सहित गायन करने लगी, उनका गायन मनुष्यों को तो क्या पक्षियों को भी मुग्ध कर देने वाला था, उनके मधुरकण्ठ की ध्वनि से सब पशुपक्षी चित्रवत निश्चेष्ट होगये, उस समय क्रीडा के लिये निकले हुए सूर्ययश के कान में भी वह मधुर ध्वनि पडी, साथ के सैनिक तो पहिले ही उस गायन से मुग्ध होकर निश्चल हो चुके थे, राजा को इस मधुर गायन पर अत्यन्त आश्चर्य इसलिये हुआ, कि पशुपक्षी और मनुष्य जिसके कान में भी वह मीठी आवाज पहुची वह उसी में तल्लीन होगया, राजाने मन्त्री से कहा-चलो मन्दिर में भगवान के दर्शन भी करेंगे और मधुर गायन का भी रसास्वादन करेंगे। गायन से मोहासक्त राजा मन्दिर में गया तो वहा अत्यन्त मनोहर एवं रूपवती दो कन्यायों को गायन करते हुए देखा, और वह उनमें आसक्त होकर बार बार उन्हे देखने लगा, यह कन्यायें किस कुल की होंगी, इनका उपयोग करने वाला कौन भाग्यशाली होगा ? इत्यादि विचार राजा के मन में उठने लगे राजा की आज्ञा से मन्त्रियो ने जाकर सर्व वृत्तान्त जानना चाहा देवियो ! आप किस लोक को सुशोभित करती हैं ? आपका स्वामी कौन है ? और आप यहा किस लिये आई है ?

उनमें से एक ने उत्तर दिया—हम दोनों मणिचूड विद्याधरों की कन्यायें हैं हम बचपन से ही इस कलाका अभ्यास कर रही हैं, हमारी यौवनावस्था पर पिताजी इस चिन्ता में रहने लगे कि

वह हमें किस को समर्पित करें, परन्तु हमारे योग्य पति नहीं मिला, अतः हम जगह जगह अरिहंत प्रभु के मन्दिरों के दर्शन के लिये निकली हैं क्योंकि यह मनुष्य जन्म फिर कब मिलना है ? जिनेश्वर भगवान के चरणों से पवित्र हुई यह नगरी भी तीर्थरूप है इसलिये यहां भी प्रभु के दर्शन करने आई हैं।

मन्त्री ने कहा—आप का सूर्ययशा राजा के साथ सम्बन्ध होना सर्वथा योग्य एवं उत्तम प्रतीत होता है, क्योंकि ये आदीश्वर प्रभु के पौत्र, भरतचक्रवर्ती के पुत्र तथा अनेक कलाओं के जानकार शान्त, गुणी और बलवान हैं, आप पर तो प्रभु की कृपा हुई समझिये जो तुरन्त ही सूर्ययशा जैसा योग्य स्वामी तुम्हें मिला है। यह सुन उन्होंने कहा—हमारी प्रतिज्ञा है हम स्वाधीन पति से विवाह करेंगी, दूसरे से नहीं, राजा ने उनकी बात स्वीकार करली, और वहां पर आदीश्वर प्रभु के समक्ष ही उनका विवाह होगया। उनके प्रीतिरस से आकर्षित हुआ सूर्ययशा रात दिन उनके साथ भोगविलास में ही आसक्त रहते हुए समय व्यतीत करने लगा।

एक दिन सूर्ययशा दोनों स्त्रियों सहित झरोखे से नगर की शोभा देख रहा था, उस समय नगर में यह घोषणा होती हुई सुनी 'ऐ लोगो ! कल अष्टमी का पर्व है, अतः धर्म क्रिया के लिये सावधान हो जायें।

यह घोषणा उन कपटा स्त्रियों ने भी सुनी, यह एक अच्छा मौका जानकर रम्भा जैसे इस संबन्ध में कुछ न जानती हो इस प्रकार पूछने लगी—यह क्या है ? राजा ने उत्तर दिया—पिताजी ने अष्टमी और चतुर्दशी दो बड़े पर्व कहे

हैं, यदि अष्टमी और चतुर्दशी की विराधना न की जाये तो इन्हीं दिनों के पुण्य सचय से मोक्ष सुख प्राप्त हो जाता है, पर्व के दिन क्लेश और क्रोध आरम्भ और परिग्रह, हास्य, मात्सर्य, क्रीडा तथा प्रमाद एव स्त्री सेवन आदि कार्य नहीं किये जाते, प्रत्युत पर्व के दिन छठ अट्ठम आदि तप करके सामायिक, पौषध प्रभु पूजन, एव पंच परमेष्ठी का स्मरण करते हुए पुण्योपार्जन एव कर्मो की निर्जरा की जाती है, और इसलिये मेरी आज्ञा से सप्तमी और त्रयोदशी के दिन लोगों को याद दिलाने के लिये यह घोषणा की जाती है। यह सुनकर प्रपंच चतुर उर्वशी कपट से कहने लगी–हे नाथ ! तप के क्लेश से अपने आपको विडम्बना में डालने से क्या लाभ ? देव दुर्लभ मनुष्य भव, ऐसा राज्य और भोगसामग्री वारवार नहीं मिलते इसलिये सोच समझ कर ही ऐसे कार्यों को करना चाहिये।

राजा के कान में किसी ने सीसा गर्म करके डाल दिया हो इस प्रकार वह वचन सुन कर क्रोध से बोला दुष्टे ! पापिनी ! तेरे उक्त वचन विद्याधरों के कुल से विपरीत हैं, यदि तू जिन पूजा और तप आदिक नहीं करती तो तेरे ऐसे रूप और कुल को धिक्कार है, यह दुर्लभ मनुष्य जन्म, सुन्दररूप, आरोग्यता और राज्य आदि सब तप से ही मिलते हैं, धर्माराधन से शरीर को कोई विडम्बना नहीं होती बल्कि आत्मिक सुख मिलता है, भले ही मेरा यह राज्य और प्राण भी चले जायें तो भी मैं पिताजी द्वारा कहे हुए पर्व का आराधन नहीं छोड़ूगा राजा के इस प्रकार वचन सुनकर उर्वशी इस प्रकार कपट वचन कहने लगी 'नाथ ! आपके शरीर को कष्ट न हो, इस प्रेम रसके आवेश में ही मैं ने

उक्त वचन कहे हैं, परन्तु आप ने तो हमारा भव ही बिगाड़ दिया है, अहो ! हम ने अपने पिता के वाक्यों का उल्लंघन करके ऐसे स्वछन्दी राजा से विवाह किया है, नाथ ! आपने तो आदीश्वर प्रभु के समक्ष हमारे कथनानुसार कार्य करने का वचन स्वीकार किया था, उस वचन की परीक्षा के लिये आज हमने छोटी सी मांग की, परन्तु इस से तो आप गुस्से में आगये। हम तो शील और सुख दोनों से भ्रष्ट हो गई, अब तो हम अग्नि में कूद कर प्राण दे देगी।

राजा ने दिये हुए वचन को स्मरण कर प्रेम पूर्ण शब्दों में कहा—भामिनी ! जो कुछ पिताजी ने कहा है वही मै करता हूं मैं उसका पुत्र होकर भी उसकी विराधना कैसे करूं ? तुम मेरे राज्य का सम्पूर्ण स्वर्ण, पृथ्वी, हाथी, घोड़े तथा राज्य भण्डार ले लो, परन्तु धर्म विघातक कार्य के लिये मुझे प्रेरणा न करो। यह सुन वह अप्सरा जरा मुस्कराकर कोमलवाणी से कहने लगी नाथ ! आपका कथन सत्य है, परन्तु जो पापी अपने वचन को पूरा करने के लिये थोड़ा सा कार्य भी नहीं करता वह अपना राज्य किस तरह दे देगा ? आपके लिये तो हमने अपने विद्याधर पिता का ऐश्वर्य छोड़ दिया तो फिर आपके राज्य से हमें क्या प्रयोजन है ? यदि आपने हमारे कथनानुसार कार्य नहीं करना है तो जिस मन्दिर में बैठकर आपने हमें वचन दिया था, उस आदीश्वर प्रभु के मन्दिर को अपने हाथ से तोड़ डालो। बस इन निष्ठुर वचनों को सुन कर राजा पर जैसे वज्रपात हुआ हो ऐसे वह एक दम मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा, यह देख व्याकुल हुए मन्त्री तथा अन्य कुटुम्बियों ने चन्दन आदि से राजा

की मूर्च्छा हटाई, मूर्च्छा हटने पर राजा उनसे कहने लगा पापिनी ! तुम्हारे इन वचनों से प्रतीत होता है कि तुम विद्याधर के कुल की नहीं बल्कि नीच कुल की हो, किसी चाडाल की कन्यायें हो, मैं ने तो रत्न के भ्रम में काच का टुकड़ा ही ग्रहण किया है, क्या आदीश्वर प्रभु के मन्दिर को तोड़ने वाला भी कोई इस ससार में जीवित है ? निस्सन्देह मैं आपके वचनो का बधा हुआ हू, मुझे इस से उऋण करने के लिये धर्म नाशक कार्य के सिवाय और जो चाहो मागलो, मेरा यह सारा राज्य और मेरे प्राण भले ही ले लो परन्तु मैं पर्वाराधन नही छोड़ सकता।

यह सुन कर अप्सरा ने कहा—कि यदि ऐसा है तो अपने पुत्र का मस्तक काट कर हमें दो। तब राजा ने विचार पूर्वक कहा—सुलोचने ! यह पुत्र मेरे से ही हुआ है, अत तुम मेरा ही सिर ग्रहण करो, ऐसा कह कर राजा ने अपना सिर काटने के लिये तलवार को उठाया, परन्तु उस अप्सरा ने दैविक शक्ति से तलवार की धार बाध दी इस तरह राजा अपना सिर न काट सका, इस पर राजा को बड़ा क्षोभ हुआ और अपने शस्त्रालय से एक के बाद दूसरी नई-नई तलवार लेकर सिर काटने के लिये प्रवृत्त हुआ, इस प्रकार उसने अपना सिर काटने में जरा भी सकोच न किया, इतने मे आकाश से पुष्प वृष्टि हुई, अप्सराओं ने अपना वास्तविक रूप प्रगट किया और आदर पूर्वक जय जय की ध्वनि करने लगी, और कहने लगी—राजन ! आपने सचमुच आदीश्वर भगवान और भरतचक्रवर्ती के कुल को उज्वल किया है, देवताओं के समक्ष इन्द्र ने आप के सत्त्व, धैर्य और धर्म निश्चलता की जो प्रशसा की थी, आप उससे भी बढ कर धर्म में दृढ

प्रमाणित हुए हैं—उस समय स्वयं इन्द्र ने भी वहां आकर राजा की प्रशंसा की और इसके बाद इन्द्र और अप्सरायें देवलोक चली गई।

इस लिये हे भव्य प्राणियों ! आप भी धर्म मार्ग ग्रहण कर उस पर निश्चल रहो, सांसारिक हवा की झोकों से पद विचलित न होओ। इसी प्रकार धर्म साधन में जरा भी प्रमाद न करो कभी यह विचार न करो कि आज तो संसार का सुख भोगलें, धर्म कार्य कल को करलेंगे, इस प्रकार प्रमाद करने वाला प्राणी भी अमूल्य रत्न समान धर्म का साधन नहीं कर सकता। जैसे—

किसी नगर में दो वनिये रहते थे, अनेक तरह का व्यापार करने पर भी दुर्भाग्य से वे धन एकत्रित न कर पाये, अन्त में एक यक्ष का आराधन प्रारम्भ किया, एक दिन यक्ष प्रसन्न हुआ, और उससे उन्होंने धन सम्पत्ति की याचना की। यक्ष ने कहा—तुम्हें धन-सम्पत्ति की बहुत आवश्यक्ता है, तो जाओ, मैं तुम पर प्रसन्न हुआ, तुम दोनों एक एक गाड़ी तैयार रक्खों, काली चतुर्दशी की रात को तुम्हें गाड़ियों सहित रत्नद्वीप में ले जाऊँगा, वहां मार्ग में अनेक रत्न पड़े रहते हैं, तुम जितने रत्न एकत्रित कर सको, कर लेना, मै फिर दो पहर व्यतीत होने पर तुम्हें गाड़ियों सहित उठा कर वापस यहां ले आऊँगा। वनिये ये सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और दोनों ने ही ऐसी बड़ी बड़ी गाड़ियां तैय्यार कराया कि उसमें बहुत से रत्न भर सकें और काली चतुर्दशी की रात को तैय्यार होगये। निश्चित समय पर यक्ष ने दोनों को गाड़ों सहित उठा कर रत्न द्वीप में छोड़ दिया, जहां पर उन्हें छोड़ा गया वहां पर अत्यन्त सुगन्ध परिपूर्ण और सुन्दर दो कोमल

शय्या तैयार पडी थी, दोनों में स एक ने विचार किया कि अभी तो दो पहर तक यहा रहना है, इसलिये एक घण्टा भर इस पर आनन्द पूर्वक आराम ही करलू तो कोई हानि नही, ऐसा विचार कर वह सो गया और उसके दो पहर निद्रा में ही व्यतीत होगये, और दूसरे वनिये ने हर तरह के विचार और कार्य छोड कर रत्न सग्रहीत में ही अपना समय व्यतीत किया, और प्रचुर रत्न सग्रहीत कर लिये। दो पहर व्यतीत होने पर यक्ष ने दोनों को गाडियों सहित लाकर शहर के पास छोड दिया, चतुर वनिये ने उन रत्नों से सुन्दर महल वनवाया तथा हर तरह से सुखी होगया और दूसरा प्रमादी वनिया वैसा ही दु खी रहा तथा उसकी प्रचुर धन सम्पति को देखकर सदा पश्चाताप करता रहा।

ऐसी ही इस ससार के मनुष्यो की गति है मनुष्यो को देव गुरु और धर्मरूपी रत्नद्वीप प्राप्त होता है परन्तु जो अपना समय भोग विलास और ऐसो आराम मे व्यतीत करते हैं वे प्रमादी वनिये की तरह पश्चाताप ही करते रह जाते हैं और पूर्ववत् दु खी वने रहते हैं एव जो अप्रमत्त होकर धर्म किया करके पुण्य रूपी रत्न ही इकठे करते हैं, जिनका मन विषय कषाय की ओर नही दौडता और जो ज्ञान, शील, तप, भावना में लीन रहते हैं वे चतुर वनिये की तरह अक्षय सुख मोक्ष पद प्राप्त कर लेते है।

हे भव्यात्माओ! अपना मनुष्य जन्म सार्थक करने के लिये, और जन्म मरण के दु खो से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्ति के लिये जितना भी होसके धर्म का आराधन दृढता से एव प्रमाद रहित होकर करो।

देशना का प्रभाव

इस प्रकार भगवान की अमृतमयी देशना सुनकर बहुत से मनुष्यों को वैराग्य उत्पन्न हुआ, और तत्काल ही बहुत से पुरुषों और स्त्रियों ने भगवान के चरणों में दीक्षा ग्रहण की, कइयों ने श्रावक धर्म अङ्गीकार किया। तदनन्तर चारु आदि गणधरों को उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य यह त्रिपदी भगवान ने स्वयं सुनाई और उन्होंने भी त्रिपदी के अनुसार एक सौ और दो गणधरों ने चौदह पूर्व सहित द्वादशांगी की रचना की, तदन्तर दिव्यचूर्ण वासक्षेप का थाल लेकर देवताओं सहित देवेन्द्र भगवान के पास आया, और भगवान ने स्वयं गणधरों के सिरपर वासक्षेप डाला और द्रव्य, गुण, पर्याय और नय से अनुयोग तथा गण की आज्ञा प्रदान की, इस समय देवताओं और नर नारियों ने भी दुंदुभि गर्जना के साथ गणधरों के मस्तक पर वासक्षेप डाला और गण-धर भगवान की वाणी सुनने के लिये उद्यत हुए और भगवान ने पुनः पूर्वाभिमुख दिव्य सिंहासन पर बैठकर गणधरों के लिये शिक्षारूप देशना प्रारम्भ की, और जब पहली पौरुषी पूर्ण हुई तब भगवान ने देशना समाप्त की। उस समय स्वर्ण के थाल में रखी हुई आढ़क प्रमाणशाली की बलि राजभवन में से समवस-रण में लाई गई, और भगवान की प्रदक्षिणा के बाद उस बलि को आकाश में उछाला गया, उसमें गिरती हुई आंधी बली को देवताओं ने आकाश में ले लिया और अवशिष्ट आधा भाग राजा तथा अन्य लोगों ने हर्ष पूर्वक समभाग में बांट लिया। तदनन्तर तीर्थङ्कर भगवान उठे और उत्तर द्वार से निकल कर दूसरे भाग

में बताये गये देवच्छंद में जाकर विश्राम किया इसके बाद गणधरों में मुख्य चारु गणधरने भगवान के चरण पीठ पर बैठकर तीर्थङ्कर प्रभु के प्रभाव से संशयों का विनाश करने वाली देशना प्रारम्भ की, और दूसरी पौरुषी के पूर्ण होने पर चारु गणधर ने देशना समाप्त की। तदनन्तर जैसे उत्सव पर आये हुए लोग उत्सव समाप्त होने पर वापस चले जाते उसी तरह सुर, असुर और राजा आदि भगवान को नमस्कार कर हर्ष से अपने अपने स्थान पर चले गये।

शासन देवता

भगवान सम्भवनाथ स्वामी के तीर्थ में श्यामवर्ण, और त्रिमुख नामक एक यक्ष हुआ, जिसके तीन नेत्र, तीन मुख और छ हाथ थे, मयूर का वाहन था, दाईं ओर के तीन हाथों में नकुल, गदा और अभय को धारण किया हुआ था और बाईं ओर के तीन हाथों मे बिजोरा (फल विशेष) माला और अक्षसूत्र ग्रहण किया हुआ था। इसीप्रकार उस तीर्थ में दुरितारि नामक देवी यक्षणी हुई जिसकी चार भुजायें थी, गौर वर्ण और मेष का वाहन था, दाईं ओर के दो हाथों में वरद और अक्षसूत्र तथा बाईं ओर के दो हाथों मे सर्प और अभय शोभा पारहे थे, इस प्रकार त्रिमुख यक्ष और दुरितारि देवी दोनों प्रभु के शासन देवता हुए और, निरन्तर प्रभु के पास आत्म रक्षक की तरह रहने लगे। इसके पश्चात् चोंतीस अतिशयों से युक्त सम्भवनाथ प्रभु ने साधुओं के परिवार सहित उस स्थान से दूसरी जगह विहार किया।

भगवान का विहार और परिवार—

विहार करते हुए प्रभु के दो लाख साधु, तीन लाख और छत्तीस हजार साध्वियां, दो हजार और डेढ़ सौ चौदह पूर्वधारी, नौ हजार और छः सौ अवधिज्ञानी, बारह हजार और डेढ़ सौ मनःपर्यवज्ञानी, पन्द्रह हजार, केवलज्ञानी, उन्नीस हजार और आठ सौ वैक्रिय लब्धिवाले, बारह हजार वादलब्धिवाले वादी, दो लाख और त्र्यानवे हजार श्रावक, और छ लाख छत्तीस हजार श्राविकाओं का परिवार हुआ। भगवान संभवनाथ प्रभु ने केवलज्ञान प्राप्त करने के अनन्तर चार पूर्वांग और चौदह वर्ष न्यून ऐसे एक लाख पूर्व तक विहार किया!

निर्वाण महोत्सव

तदन्तर सर्वज्ञ प्रभु ने अपना मोक्ष काल समीप जान कर परिवार सहित समेत शिखर पर्वत पर आये और वहां एक हजार मुनियों सहित पादपोपगम अनशन किया, उस समय आसन कम्पायमान होने से अवधिज्ञान द्वारा सब वृतान्त जानकर सुर-असुरों के इन्द्र परिवार सहित वहां आकर भक्ति से प्रभु की सेवा करने लगे, एक मास के अन्त में पर्वत की तरह निष्कंप प्रभु ने पर्यंकासन में बैठे हुए मन-वचन और काया के योग का विरोध करने वाला शैलेशी नामक अन्तिम ध्यान प्राप्त किया और चैत्र मास की शुक्ल पंचमी के दिन चन्द्र के मृगशिर नक्षत्र में आने पर अनन्त ज्ञान अनन्तदर्शन अनन्तवीर्य अनन्त सुख को सिद्ध करते हुए प्रभु को निर्बाध मोक्ष पद प्राप्त हुआ। मानो यह

भी प्रभु के अश हो, ऐसे एक हजार अनशन व्रत धारी साधुओं को भी उसी प्रकार मोक्ष पद प्राप्त हुआ।

भगवान के निर्वाण के समय नारकी जीवों को भी क्षण भर के लिये सुख हुआ। भगवान के मोह मे इन्द्र तो जोर जोर से रोने लगा, और इन्द्र के पीछे दूसरे देवता भी रोने लगे, इन्द्र मोह को छोडने के लिये भगवान के गर्भ से लेकर मोक्ष पर्यंत के गुणों और उपकारों का विचार किया—और हर्ष पूर्वक इस प्रकार कहने लगा—

हे देव! आप स्वय तो ससार सागर से पार उतरते हैं साथ मे औरो को भी संसार सागर मे पार उतारते है, आप तो गर्भ में आये तभी तीन ज्ञान के धारक थे, आपके जन्मोत्सव का हमें ही सौभाग्य प्राप्त हुआ था आपने यौवनावस्था में राज्यकार्य चलाते हुए प्रजा को आनन्दित किया था भगवन वर्षीदान से आपने अनेक मनुष्यों को कृतकृत्य किया था। आपने कर्मों का नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त किया और लोगों को मोक्ष मार्ग का प्रकाश करने वाली देशना से तृप्त किया था। नाथ! आपका सारा जीवन ही उपकार करते हुए व्यतीत हुआ, हमतो आपकी ही कृपा से कृतार्थ हुए हैं, इत्यादि गुणों को स्मरण करने के अनन्तर इन्द्र भगवान के शरीर का दाह संस्कार करने के लिये उद्यत हुआ।

इन्द्र के आदेश से अभियोगिक देवता नंदन वन से गोशीर्ष चन्दन की लकडिया ले आये, और इन्द्र की आज्ञानुसार पूर्व दिशा में उन्हीं लकडीयों मे गोलाकार चिता निर्माण की, और अन्य साधुओं के लिये पश्चिम दिशा मे चौरस चिता बनाई। देवताओं द्वारा लाये गये क्षीर समुद्र के जल मे इन्द्र ने भगवान

के शरीर को स्नान कराया, और गोशीर्ष चन्दन का लेप किया, हंस लक्षण युक्त श्वेत-देव दुष्य वस्त्र से प्रभु का शरीर आच्छादित किया, और मणिका के आभूषणों से भगवान के शरीर को विभूषित किया। एक सुन्दर रत्नशिविका तैयार की गई, इन्द्र ने भगवान् को सिर पर उठाकर रत्नशिविका में बैठाया। और फिर उस शिबिका को इन्द्र स्वयं उठाकर चिता के स्थान की ओर रवाना हुये शिविका के आगे आगे कई देवता धूपदानियां लेकर चलने लगे, कई देवता और देवियां नृत्य, संगीत करने लगी, कई देवता शिविका पर पुष्पों की वृष्टि कर रहे थे और कई उन पुष्पों को श्रद्धा से उठा रहे थे, कई देवता देवदूष्यवस्त्रों के तोरण बनाये हुये थे और कई यक्षकर्दम का छिड़काव कर रहें थे कई गोफन से फैंके हुए पत्थर की तरह शिबिका के आगे लोट रहे थे और कई रोते हुए उस शिबिका के पीछे पीछे चल रहे थे।

इस प्रकार शिबिका चिता के पास पहुंची, और इन्द्रने प्रभु का शरीर चिता में बिराजमान किया, देवता की आज्ञा से अग्नि कुमार देवता ने चिता में अग्नि प्रगट की, और वायुकुमार देवता ने वायु चला कर अग्नि को चिता के चारों ओर फैलाया और प्रज्वलित किया, चिता में देवता गण बहुतसा कपूर और घड़े भर भर के घी और मधु के डालने लगे, जब अस्थि के सिवाय सब धातुयें नष्ट होगई तब मेघकुमार ने क्षीर समुद्र का जल बरसा कर चिता को ठण्डा किया। तदन्तर सौधर्मेन्द्र ने ऊपर की दाहिनी डाढ़ को अपने विमान में प्रतिमा की तरह रख कर पूजा करने के लिये ले लिया, चमरेन्द्र ने नीचे की दाहिनी डाढ़ को लिया ईशानेन्द्र ने ऊपर की बाईं डाढ़ को ग्रहण किया और बलीन्द्र ने

नीचे की बाई दाढ को लिया, तथा अन्यान्य देवताओं ने अस्थिया ग्रहण की।

जहा पर भगवान के शरीर का अग्नि स स्कार किया गया था वहा पर उन्होंने तीन रत्नस्तूप-समाधिया बनाई, और वहा पर शाश्वतीप्रतिमाओ का अष्टाहिका महोत्सव किया, और वहां पर महोत्सव करने के अन्तर इन्द्र तथा देवता अपने अपने स्थान पर चले गये, और वहा पहुच कर भगवान की अस्थिया माणवस्तभ पर पूजन करने के लिये स्थापित की।

भगवान सभवनाथ प्रभु ने पन्द्रह लाख पूर्वकुमार अवस्था में चार पूर्वा ग सहित चौवालीस लाख पूर्व राज्य कार्य में, और चार पूर्वा ग न्यून एक लाख पूर्व दीक्षा की अवस्था में इस प्रकार कुल साठ लाख पूर्व का आयुष्य भोग और दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथ प्रभु के निर्वाण से तीस लाख करोड सागरोपम व्यतीत होने के पश्चात् सभवनाथ प्रभु को निर्वाण पद प्राप्त हुआ।



श्री संभवनाथ चरित्र के पहिले से ग्राहक बने उसकी नामावली

२२५ किसनलालजी संपतलालजी लूणावत, मु० फलोदी
५० श्री जैनेश्वेताम्बर लायब्रेरी, पाली
५० अमृतलालजी अमरचंद, पालीताणां
३० केसरीचंदजी कंवरलालजी, फलोदी
३० दोलतराजजी सेसमलजी, पाली
१० नथमलजी चंपालालजी बेटावद
१० सुमेरमलजी सुराना कलकत्ता,
८ हस्तीमलजी पन्नालालजी, बेटावद
६ सुगनमलजी गुलेछा, फलोदी
४ सेसमलजी गुलाबचंदजी, पाली
३ मानीकलालजी गुलावचंदजी, फलोदी
३ भूरालालजी हेमावत, पाली
३ रिखवदासजी हुक्मीचंदजी, जब्बलपुर
३ अगरचंदजी लालचंदजी, फलोदी
३ फतेचंदजी आसारामजी, पाली
२ हीराचंदजी चुनीलालजी, पाली
२ लछमीलालजी ललवाणी, फलोदी
२ पदमचंदजी संपतलालजी, फलोदी
२ कस्तुरचंदजी पन्नालालजी, फलोदी
२ मुलचंदजी फुसालालजी, फलोदी

१ रेखचन्दजी नेमीचन्दजी, पालीताणा
१ आसकरणजी चोपड़ा, फलोदी
१ राजमलजी दफतरी मुता, जोधपुर
१ के० डी० पारख, मींवखेड़ा
१ मीसरीलालजी पोरवाल, पाली
१ मुलजी हमराज, पालीताणा
१ सुभागमलजी विजेलालजी, मदरास
१ मानीकलालजी गुलाबचन्द, मदरास
१ मगनीरामजी सीवराजजी, पाली
१ चन्दूलालजी हस्तीमलजी, पाली
१ जेठमलजी मुता, पाली
१ हीरालालजी चोपड़ा, पाली
१ नन्दरामजी वगतावरमलजी, पाली
१ मुकनचन्दजी डाकलीया, पाली
१ केवलचन्दजी लूणीया, पाली
१ रूपराजजी मुणोत, सोजत
१ घच्छराजजी पोरवाल, पाली
१ अमृतलालजी मोहनलालजी, भावनगर
१ कन्यालालजी ललवाणी, येटावद
१ श्रीपार्श्वनाथ जैन लायब्रेरी, येटावद
१ भंवरलालजी तालवाणी, येटावद
१ मेघराजजी गुलेछा, पाली

आयुष्यी भव्य जीवों को तर जाने के लिये-बोध प्रद उपदेश भी समयोचित दिया है।

वीरमती नामका एक स्त्री पात्र स्त्री अबला नहीं, लेकिन समय आने पर सबला बन सकती है और जब अपने सत्य स्वरूप में आती है तब मन मुताबिक पासे रचकर इच्छा मुताबिक कार्य कर सकती है यह आज की हमारी कमजोर डरपोक बहिन-बेटियां-माता को सिखलाती है।

ग्रन्थ हाथ में लेने के बाद शायद ही छोडने का मन होता है। फिर भी विशेषता यह है कि चाहे वहा से पढने से रस पैदा होता है और कुतुहल जागता है कि क्या हुआ ? आगे क्या होगा ? क्या आवेगा ? ऐसी उत्पन्न आकांक्षा को पूर्ण करने में पढने वाला ओत प्रोत हो जाता है और किताब खतम करके खडे होने का मन होता है।

रोयल आठ पेजी, साइज, ५०० पृष्ठ का दलदार ग्रन्थ पक्का रेशमी कपडे का बाइन्डिंग होने पर भी प्रचार के खातिर फक्त की० ४) चार रुपिया रखे गये हैं। पोष्ट खर्च अलग मगाइए आज ही मगाइए।

श्री संभवनाथ चरित्र

यह तो पाठकों के सामने उपस्थित ही है। मूल्य आठ आना

महासती सुरसुन्दरी

जैन सिद्धान्त का सार—कर्मों का बन्धन और उनका

उदय यदि आप समझना चाहते हैं तो इस रोमांचकारी घटना को एकबार अवश्य पढ़िये।

आठ घन्टे में एक अरब तेतीस करोड़ सोनइयों की सम्पत्ति का विलायमान हो जाना, श्रीमन्तों का लकड़ी ढोना, सवा करोड़ के कीमती लालों का हरा जाना, सेठ के पुत्रों का मजदूरी करना, स्त्री है या पुरुष इसकी परीक्षा अनेक प्रकार से कराया जाना, गई हुई सम्पत्ति का पुनः मिलना आदि का वर्णन समय समय पर कई प्रकार की नीति शिक्षा प्रकट करते हुये आदर्शता के साथ किया गया है। इतना ही नहीं सती-सुरसुन्दरी द्वारा अपनी शील रक्षा के निमित्त की गई बुद्धिमता को पढ़ कर तो आपको दांतों नीचे अंगुली दबाना पड़ेगा।

भाषा सरल और सरस—तथा विषय अनुपम ढंग पर लिखा गया है, जो प्रत्येक नर नारी और बालक—बालिकाओं के पढ़ने सुनने और समझने योग्य है। एक बार पढ़ना आरम्भ करने के बाद फिर बिना पूरा पढ़े छोड़ने की इच्छा ही नहीं होती। इस में परम मनोहर, नयनाभिराम और चित्ताकर्षक रंग बिरंगे चित्र दिये गये है। जिन्हें मात्र देखने पर ही 'महासती सुरसुन्दरी" का सारा चरित्र बायस्कोप की भांति आंखों के समक्ष दिख आता है। इतना होने पर भी मूल्य केवल ||/ आठ आना मात्र रखा गया है।

धर्मदृढ़ भावी तीर्थंकर

सुलसा सती

सम्यग् दर्शन का स्थान जैन शास्त्रों में बहुत ऊँचा है। जब

तक मनुष्य अपने धर्म पर श्रद्धा नहीं रखता और संदेह मे पड़ा रहता है तब उसका कल्याण कदापि नहीं हो सकता । जो अपना कल्याण करना चाहता है उसे अपने देव, गुरू और धर्म पर अविचल श्रद्धा रखनी ही चाहिये। इस पुस्तक में इसी सिद्धान्त पर अविचल श्रद्धा रखनी ही चाहिये । इस पुस्तक में इसी सिद्धात का विस्तृत वर्णन महासती सुलसा जीवनी में आपको मिलेगा ।

इसके साथ ही सती सुलसा का दामपत्य जीवन धर्मप्रभाव, आत्मिक बल, अभयकुमार की चातुर्य तथा अम्बड द्वारा की गई सुलसा की विषम परिक्षा का बहुत मार्मिक एव विषद वर्णन पढकर आप प्रफुल्लित हो उठेंगे । एक बार जरूर मँगाकर देखिये बढिया कागज पर मोटे टाइप में सुन्दर छपी हुई इस पुस्तक का मूल्य केवल ।) चार आना मात्र है ।

स्तवन मंजरी

इस पुस्तक मे नये ? स्तवनो (गायन) का सग्रह किया है जो कि लोक बडे चाह मे बोलते है । आजकल लोग रेकार्ड और सिनेमा फिल्म से गवाते हुए रागो को बहोत ही पसद करते है इसलिये हमने इसमें जो जो गायन सग्रहीत कीये है वे सब उसी राग के हैं, पुराने रागका एक भी स्तवन नहीं है । साथ में मन्दिरजी मे जाने की विधि चैत्यवदन की विधी भी दी है । प्रचार के खातर किमत मात्र चार आना ही रखा है । आशा है कि आप यह सुवर्ण अवसर हाथ से न जाने देगें ।

शीलव्रत का आदर्श रूप

महासती मृगावती

सब धर्मों में शीलव्रत को अत्यन्त ऊँचा व्रत माना है। यही एक ऐसा विषय है जो प्राणि को मोक्ष पद तक प्राप्त करा सकता है और नरक गति में डाल सकता है। महासती मृगावती ने कैसी विकट परिस्थिति में किस अद्भुत चातुरी से अपने शील की रक्षा की, किस प्रकार शत्रु से घिरे हुए अपने राज्य की रक्षा की आदि का वर्णन पढकर आप चकित हो जावेंगे। शीलव्रत के प्रभाव से सती मृगावती के जीवन मे अदभुत साहस धीरजता, गंभीरता और वैराग्यता का दर्शन कर आप मुग्ध हो जावेंगे। यह पुस्तक बहू, बेटियों को उपहार देने योग्य है। बढ़िया कागज पर सुंदरता से छपी हुई यह सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल ≡) तीन आना है।

जिनेन्द्र पूजा संग्रह

इस किताब में स्नान, अष्टप्रकारी और नौपद की पूजा का संग्रह किया गया है। पुस्तक जेबी आकार में आज की शैली में लिखी गई है। अर्थात् एक पंक्ति में एक पद है; जिससे कि पढ़ने वाले आसानी से पढ़ सकें प्रचार के लिये ८० पृष्ट होने पर भी मूल्य मात्र तीन आना है।

स्वास्थ्य का सच्चा मित्र

घर का "डाक्टर"

इस किताब में प्रचलित तमाम रोगों की स्वदेशी दवाइया इस खूबी से लिखी गई है कि गरीब पूजीपती समानरूप से लाभ उठा सकते है। विशेषता यह है कि हजारो के खर्च से जो रोग न जावे वह कौड़ियों की दवाई से शीघ्र निर्मूल हो जाते हैं। जन-हितार्थ ४८ पृष्ट होने पर भी मूल्य मात्र दो आना

श्री जैन नित्य-स्मरण माला

इस किताब में नित्य पाठ करने लायक दश छन्दों और स्तुति का सग्रह किया गया है, जैसे कि सिद्ध परमात्मा का, पार्श्वनाथ स्वामी का, महावीर स्मामी का, और गोतम स्वामी का, सोलह सती का, शान्ती नाथजी का, सखेश्वर—पार्श्वनाथ का, नवकार का, इत्यादि महान् प्रभाविक छन्दो का, समावेश है, नित्य पाठ करने से इस लोक और परलोक के सुखों की प्राप्ति होती है, यदि आप प्रभावना करें तो ऐसी किताबो की क्रिया करे कि एक सस्ता दो कृप जाता लाभ मिले। मूल्य मात्र एक आना १०० पुस्तक के रुपये पाच शीघ्र म गाइये।

दृष्टांत रत्न संचय

इस किताब में नीती वैरा य बुधि और शिक्षा हँमी मदाचा-

रादि अनेक विषय के ऐसे दृष्टान्त संग्रह किये गये है कि उसके पढ़ने से लोग दुराचार और दुर्व्यसन से बचके सदाचारी बन जाते है, एक बार शुरु करने पर सम्पूर्ण पढ़े विना न छोडेगें मूल्य मात्र एक आना। आशा है कि आप यह सुवर्ण अवसर हाथ से न जाने देगें।

अकल का तजरबा

यह एक बुद्धि की वृद्धि के लिये समस्याए हैं, पढ़ने वाले बच्चो को तो बहुत ही उपयोगी है चमत्कार पूर्व मूल्य एक आना

रत्नाकर पच्चीशी

इसमें परमात्मा के आगे बोलने की बहुत ही बढ़िया स्तुति है मूल्य एक आना

संक्षिप्त पद्यमय महावीर जीवन

इसमें तीर्थ नायक का रोचकता से कविता के साथ वर्णन किया गया है मूल्य तीन पैसे।

नवीन महावीर गायन माला

इस किताब में बढ़िया गायनो का संग्रह है मूल्य दो पैसे

स्थापनाजी



नियम ।



१—एक रुपये से कम की वी॰पी॰ नहीं की जायगी। यदि कम कीमत पुस्तकें मंगाना हो तो टिकटें भेजवादें ।

२—दस रुपये से अधिक की पुस्तकें मंगाने वालों को सेंकड़े सवा छे रुपये, पचवीस रुपये की पुस्तकें मंगाने वालों को साडा बारह रुपये कमीशन दिया जायगा ।

३—वी॰ पी॰ मंगवा के वापस लौटा देंगे तो डाक-व्यय का जुम्मा पुस्तकें मंगाने वाले का रहेगा।

४— हमारी पुस्तकें वेचने के लिए एजंट बनेगा उसे ठीक कमीशन दिया जायगा ।

५—पुस्तकें विक्रय की रकम से पुनः पुस्तकें ही छपाई जायंगी इसलिये हमारी पुस्तकें खरीदने वालों को दुगना लाभ होगा ।

६—परभावना देने के लिये लेने वाले को सभी पुस्तकें सस्ते दामों पर दी जा सकेंगी ।

" प्रकाशक "